ख़ुतबात–5

हज
की हक़ीक़त

सय्यद अबुल आला मौदूदी

हज की हक़ीक़त

(ख़ुतबात-5)

मौलाना सैयद अबुल आला मौदूदी (रह०)

अनुवादक
डॉ० कौसर यज़दानी नदवी

मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स
नई दिल्ली - 110025

KHUTBAT -V (Hindi)
इस्लामी साहित्य ट्रस्ट प्रकाशन न० -85

किताब का नाम : ख़ुतबात भाग-५ (उर्दू)
लेखक : मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी

प्रकाशकः मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स
D-307, दावत नगर, अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव,
जामिया नगर, नई दिल्ली-110025
दूरभाष : 26971652, 26954341
फैक्स : 26947858
E-mail: mmipublishers@gmail.com
Website: www.mmipublishers.net

पृष्ठ : 52
संस्करण : नवम्बर 2011 ई०
संख्या : 2100
मूल्य : 16.00

मुद्रक : असीला आफसेट प्रिंटर्स, नई दिल्ली-2

विषय-सूची

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

'अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है ।'

भूमिका

इस किताब में इस्लामी जगत् के एक बड़े आलिम मौलाना सैयद अबुल आला मौदूदी (रह०) के उन ख़ुतबों (भाषणों) को जमा करके प्रकाशित किया गया है, जो उन्होंने सन् 1938 ई० में दारुल इस्लाम पठानकोट (पंजाब) की जामा मस्जिद में कम पढ़े-लिखे आम मुसलमानों के सामने दिए थे । इन ख़ुतबों में इतने सादा और प्रभावकारी अन्दाज़ में इस्लाम की शिक्षाओं को उनकी रूह के साथ पेश किया गया है कि इन्हें सुनकर या पढ़कर बेशुमार लोगों की ज़िन्दगियाँ सुधर गईं और वे बुराइयों को छोड़ने और भलाइयों को अपनाने पर मजबूर हो गए । इन लोगों में मुसलमान भी हैं और ग़ैर मुसलिम भी ।

इन ख़ुतबों की इन्हीं ख़ूबियों की वजह से दुनिया की अनेक भाषाओं में इनके तर्जुमे बड़ी तादाद में प्रकाशित किए गए और वे सभी लोकप्रिय हुए ।

मौलाना मौदूदी की एक अन्य लोकप्रिय किताब दीनियात (इस्लाम धर्म) में इस्लामी अक़ीदों की तफ़सील बयान की गई है और इस्लाम के शरई निज़ाम (व्यावहारिक व्यवस्था) के बारे में भी कुछ जानकारी उपलब्ध कराई गई है और अब इस किताब में दीन की रूह (स्प्रिट) और इबादतें तफ़सील से बयान कर दी गई हैं । उक्त दोनों किताबों को मिलाकर पढ़ने के बाद दीन को समझना और दीन पर चलना भी आसान होगा और फिर दीन पर अमल करने के नतीजे में इंसान और इंसानी समाज में एक ख़ुशगवार तब्दीली देखने में आएगी और लोग दीन के फ़ायदों और बरकतों को अपनी आँखों से ख़ुद देख सकेंगे ।

जो लोग इन ख़ुतबों को जुमा में सुनाना चाहें वे पहले हर ख़ुतबे के शुरू में मसनून ख़ुतबा पढ़ें । दूसरा ख़ुतबा लाज़िमी तौर पर अरबी में दिया जाना चाहिए ।

यह बात भी बता देना ज़रूरी मालूम होता है कि ये ख़ुतबे जिन हालात में दिए गए थे वे अब बहुत कुछ बदल चुके हैं, इसलिए पढ़ते वक़्त उन हालात को नज़र में रखना चाहिए ।

इस्लामी साहित्य ट्रस्ट (रजि०) हिन्दी ज़ुबान में इस्लामी शिक्षाओं पर आधारित किताबें तैयार करने की सेवा में लगा हुआ है । इस किताब को आपकी सेवा में पेश करने का सौभाग्य हमें मिला इसपर हम अल्लाह का शुक्र अदा करते हैं ।

अल्लाह से दुआ है कि वह इस किताब को ज़्यादा से ज़्यादा मुफ़ीद बनाए ।

नसीम ग़ाज़ी फ़लाही
अध्यक्ष
इस्लामी साहित्य ट्रस्ट

हज

मुसलमान भाइयो! पिछले ख़ुतबों में नमाज़, रोज़ा और ज़कात के बारे में आपको तफ़सील के साथ बताया जा चुका है कि ये इबादतें इनसान की ज़िन्दगी को किस तरह इस्लाम के साँचे में ढालती हैं और उसको अल्लाह की बन्दगी के लिए तैयार करती हैं। अब इस्लाम की फ़र्ज़ इबादतों में से सिर्फ़ हज बाक़ी है, जिसके फ़ायदे मुझे आपके सामने बयान करने हैं।

हज के मानी

हज के मानी अरबी ज़बान में ज़ियारत का इरादा करने के हैं। हज में चूँकि हर तरफ़ से लोग काबा की ज़ियारत का इरादा करते हैं, इसलिए उसका नाम हज रखा गया।

हज की शुरुआत

सबसे पहले यह जिस तरह शुरू हुआ, वह क़िस्सा बड़ा सबक़ देनेवाला है। उस क़िस्से को ग़ौर से सुनिए, ताकि हज की हक़ीक़त अच्छी तरह आपके दिमाग़ में बैठ जाए। फिर इसके फ़ायदों का समझना आपके लिए आसान होगा।

हज़रत इबराहीम (अलै०) के ज़माने में हालात

कौन मुसलमान, ईसाई या यहूदी ऐसा है जो हज़रत इबराहीम (अलै०) के नाम को जानता न हो? दुनिया की दो तिहाई से ज़्यादा आबादी उनको पेशवा मानती है। हज़रत मूसा (अलै०), हज़रत ईसा (अलै०) और हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) तीनों इन्हीं की औलाद से हैं। उन्हीं के रौशन किए हुए चिराग़ से दुनियाभर में हिदायत की रौशनी फैली है। चार हज़ार वर्ष से ज़्यादा मुद्दत गुज़री, जब वह इराक़ की सरज़मीन में पैदा हुए थे। उस वक़्त सारी दुनिया ख़ुदा को भूली हुई थी। इस ज़मीन पर कोई आदमी ऐसा न था जो उस वक़्त अपने असली मालिक को पहचानता हो और सिर्फ़ उसी

के आगे इताअत व बन्दगी में सिर झुकाता हो। जिस क़ौम में उन्होंने आँखें खोली थीं, वह अगरचे उस ज़माने में दुनिया की सबसे ज़्यादा तरक़्क़ीयाफ़ता क़ौम थी, लेकिन गुमराही में भी वही सबसे आगे थी। इल्म व फ़न और उद्योग-धंधों में तरक़्क़ी कर लेने के बाद भी उन लोगों को इतनी ज़रा-सी बात न सूझती थी कि मख़लूक़ कभी माबूद होने लायक़ नहीं हो सकती। उनके यहाँ बुतों और सितारों की पूजा होती थी। ज्योतिषी, फ़ालगीरी, ग़ैबगोई, जादू-टोने और तावीज़-गण्डे का ख़ूब चर्चा था। उस ज़माने में पुजारियों का एक गिरोह था जो मन्दिरों की हिफ़ाज़त भी करता, लोगों को पूजा भी कराता और शादी और ग़मी वग़ैरह की रस्मों को भी अदा कराता और ग़ैब की ख़बरें भी लोगों को बताने का ढोंग रचा करता था। आम लोग उनके फन्दे में ऐसे फँसे हुए थे कि उन्हीं को अपनी अच्छी और बुरी क़िस्मत का मालिक समझते थे, उन्हीं के इशारों पर चलते थे और बिना कुछ कहे-सुने उनकी ख़्वाहिशों की बन्दगी करते थे, क्योंकि उनका गुमान था कि देवताओं के यहाँ उन पुजारियों की पहुँच है। ये चाहें तो हमपर देवताओं की मेहरबानी होगी, वरना हम तबाह हो जाएँगे। पुजारियों के इस गिरोह के साथ बादशाहों की मिली भगत थी। आम लोगों को अपना बन्दा बनाकर रखने में बादशाह पुजारियों के मददगार थे और पुजारी बादशाहों के। एक तरफ़ हुकूमत इन पुजारियों की हिमायत करती थी और दूसरी तरफ़ ये पुजारी लोगों के अक़ीदे में यह बात बिठाते थे कि वक़्त का बादशाह भी ख़ुदाओं में से एक ख़ुदा है, देश और जनता का मालिक है। उसकी ज़बान क़ानून है और उसको जनता की जान व माल पर हर क़िस्म का इख़तियार हासिल है। इतना ही नहीं, बल्कि बादशाहों के आगे बन्दगी की तमाम रस्में पूरी की जाती थीं, ताकि जनता के दिल व दिमाग़ पर उनकी ख़ुदाई का ख़याल छा जाए।

हज़रत हबराहीम (अलै०) का घराना

ऐसे ज़माने और ऐसी क़ौम में हज़रत इबराहीम (अलै०) पैदा हुए और मज़े की बात तो यह है कि जिस घराने में पैदा हुए वह ख़ुद पुजारियों का घराना था। उनके बाप-दादा अपनी क़ौम के पंडित और ब्राह्मण थे। उस घर में वही तालीम और वही तरबियत उनको मिल सकती थी जो एक पंडित के लड़के को मिला करती है। उसी क़िस्म की बातें बचपन

से कानों में पड़ती थीं। वही पीरों और पीरज़ादों के रंग-ढंग अपने भाई-बन्धुओं और बिरादरी के लोगों में देखते थे, वही मन्दिर की गद्दी उनके लिए तैयार थी जिसपर बैठकर वह अपनी क़ौम के पेशवा बन सकते थे, वही नज़्र व नियाज़ व चढ़ावे जिनसे उनका ख़ानदान मालामाल हो रहा था, उनके लिए भी हाज़िर थे। उसी तरह लोग उनके सामने भी हाथ जोड़ने और अक़ीदत से सिर झुकाने के लिए मौजूद थे। उसी तरह देवताओं से रिश्ता मिलाकर और ग़ैबगोई का ढोंग रचाकर वह मामूली किसान से लेकर बादशाह तक हर एक को अपनी पीरी के फन्दे में फाँस सकते थे। इस अँधेरे में जहाँ कोई एक आदमी भी हक़ को जानने और माननेवाला मौजूद न था, न तो उनको हक़ की रौशनी ही कहीं से मिल सकती थी और न किसी मामूली इनसान के बस का यह काम था कि इतने बड़े निजी और ख़ानदानी फ़ायदों को लात मारकर सिर्फ़ सच्चाई के पीछे दुनियाभर की मुसीबतें मोल लेने पर तैयार हो जाता।

हज़रत इबराहीम (अलै०) का एलाने बराअत

मगर हज़रत इबराहीम (अलै०) कोई मामूली इनसान न थे। किसी और ही मिट्टी से उनका ख़मीर बना था। होश सँभालते ही उन्होंने सोचना शुरू कर दिया कि यह सूरज, चाँद और तारे जो ख़ुद ग़ुलामों की तरह घूम रहे हैं और ये पत्थर के बुत जिनको आदमी ख़ुद अपने हाथ से बनाता है और यह बादशाह जो हमारे ही जैसा इनसान है, आख़िर ये ख़ुदा कैसे हो सकते हैं? बेचारे ख़ुद अपने इख़तियार से हिल-डुल नहीं सकते, जिनमें आप अपनी मदद करने की ताक़त नहीं, जो अपनी मौत व ज़िन्दगी के भी मालिक नहीं, उनके पास धरा क्या है कि आदमी उनके आगे इबादत में सिर झुकाए, उनसे अपनी ज़रूरतें माँगे, उनकी ताक़त से डरे और उनकी ख़िदमत करे और उनके हुक्मों को माने? ज़मीन व आसमान की जितनी चीज़ें हमको नज़र आती हैं या जिनको हम किसी तरह जानते हैं, उनमें से कोई भी ऐसी नहीं जो ख़ुद मुहताज न हो, जो ख़ुद किसी ताक़त से दबी हुई न हो और जिसपर कभी न कभी कोई ज़वाल (पतन) न आता हो। फिर जब उन सबका यह हाल है तो उनमें से कोई रब कैसे हो सकता है? जब उनमें से किसी ने मुझको पैदा नहीं किया, न किसी के हाथ में

मेरी मौत या ज़िन्दगी के फ़ायदे और नुक़सान का इख़तियार है, न किसी के हाथ में रोज़ी और ज़रूरतें पूरी करने की कुंजियाँ हैं, तो मैं उनको पालनहार क्यों मानूँ और क्यों उनके आगे बन्दगी और इताअत में सिर झुकाऊँ? मेरा रब तो वही हो सकता है जिसने सबको पैदा किया जिसके सब मुहताज हैं और जिसके इख़तियार में सबकी मौत और ज़िन्दगी और सबका फ़ायदा व नुक़सान है। यह देखकर हज़रत इबराहीम (अलै०) ने पक्का फ़ैसला कर लिया कि जिन माबूदों को मेरी क़ौम पूजती है, उनको मैं हरगिज़ न पूजूँगा और इस फ़ैसले पर पहुँचने के बाद उन्होंने खुल्लम-खुल्ला लोगों से कह दिया—

إِنِّىْ بَرِىٓءٌ مِّمَّا تُشْرِكُوْنَ ۝

إِنِّىْ وَجَّهْتُ وَجْهِىَ لِلَّذِىْ فَطَرَ السَّمٰوٰتِ وَالْأَرْضَ حَنِيْفًا وَّمَا أَنَا مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ ۝

> जिनको तुम ख़ुदाई में शरीक ठहराते हो, उनसे मेरा कोई वास्ता नहीं। मैंने सबसे मुँह मोड़कर उस ज़ात को इबादत व बन्दगी के लिए ख़ास कर लिया है, जिसने आसमानों और ज़मीन को पैदा किया और मैं हरगिज़ शिर्क करनेवाला नहीं हूँ। (क़ुरआन, 6:78-79)

मुसीबतों के पहाड़

इस ऐलान के बाद हज़रत इबराहीम (अलै०) पर मुसीबतों के पहाड़ टूट पड़े। बाप ने कहा कि मैं तुमसे अपना ताल्लुक़ तोड़ लूँगा और तुमको घर से निकाल बाहर करूँगा। क़ौम ने कहा कि हम में से कोई तुमको पनाह न देगा। हुकूमत भी उनके पीछे पड़ गई। बादशाह के सामने मुक़द्दमा पेश हुआ। मगर वह अकेला इनसान सबके मुक़ाबले में सच्चाई की ख़ातिर डटकर खड़ा हो गया। बाप को अदब से जवाब दिया कि जो इल्म मेरे पास है, वह आपको नहीं मिला, इसलिए बजाए इसके कि मैं आपकी पैरवी करूँ, आपको मेरी पैरवी करनी चाहिए। क़ौम की धमकियों के जवाब में उसके बुतों को अपने हाथ से तोड़कर साबित कर दिया कि जिन्हें तुम पूजते

हो, वे ख़ुद कितने बेबस व मजबूर हैं। बादशाह से भरे दरबार में जाकर साफ़ कह दिया कि तू मेरा रब नहीं है, बल्कि मेरा रब वह है जिसके हाथ में मेरी और तेरी ज़िन्दगी व मौत है और जिसके क़ानून के बंधनों में सूरज तक जकड़ा हुआ है। आख़िर शाही दरबार से फ़ैसला हुआ कि इस शख़्स को ज़िन्दा जला डाला जाए। मगर वह पहाड़ से ज़्यादा मज़बूत दिल रखनेवाला इनसान जो सिर्फ़ एक ख़ुदा पर ईमान ला चुका था, इस हौलनाक सज़ा को भुगतने के लिए भी तैयार हो गया। फिर जब अल्लाह ने अपनी क़ुदरत से उसको आग में जलने से बचा लिया तो वह अपने घर-बार, सगे-संबंधी, क़ौम और वतन सबको छोड़-छाड़कर सिर्फ़ अपनी बीवी और अपने एक भतीजे को लेकर, मुसाफ़िरों की तरह मुल्क-मुल्क की ख़ाक छानने के लिए निकल खड़ा हुआ। जिस शख़्स के लिए अपने घर में महन्त की गद्दी मौजूद थी, जो उसपर बैठकर अपनी क़ौम का पीर बन सकता था, दौलत और इज़्ज़त दोनों जिसके क़दम चूमने के लिए तैयार थीं और जो अपनी औलाद को भी इस महन्ती की गद्दी पर मज़े लूटने के लिए छोड़ सकता था, उसने अपने लिए और अपनी औलाद के लिए बिना घर-बार और बिना सरो सामानी की ज़िन्दगी पसन्द की, क्योंकि दुनिया को झूठे ख़ुदाओं के जाल में फाँसकर ख़ुद मज़े करना उसे गवारा न था और उसके मुक़ाबले में यह गवारा था कि एक सच्चे ख़ुदा की बन्दगी की तरफ़ लोगों को बुलाए और इस 'अपराध' के बदले में कहीं चैन से न बैठ सके।

हिजरत

वतन से निकलकर हज़रत इबराहीम (अलै०) शाम, फ़िलिस्तीन, मिस्र और अरब के मुल्कों में फिरते रहे। ख़ुदा ही जानता है कि इस मुसाफ़िरत की ज़िन्दगी में उनपर क्या गुज़री होगी। माल व दौलत कुछ साथ लेकर न निकले थे और बाहर निकलकर अपनी रोटी कमाने की फ़िक्र में नहीं फिर रहे थे, बल्कि रात-दिन फ़िक्र थी तो यह थी कि लोगों को हर एक की बन्दगी से निकालकर सिर्फ़ एक ख़ुदा का बन्दा बनाएँ। इस ख़याल के आदमी को जब उसके अपने बाप ने और उसकी अपनी क़ौम ने बरदाश्त न किया तो और कौन बरदाश्त कर सकता था? कहाँ उसकी आवभगत हो सकती थी? हर जगह वही मन्दिरों के महन्त और वही ख़ुदाई के दावेदार

बादशाह मौजूद थे और हर जगह वही जाहिल अवाम बसते थे जो इन झूठे ख़ुदाओं के फन्दे में फँसे हुए थे। उन लोगों के दरमियान वह आदमी कहाँ चैन से बैठ सकता था जो न सिर्फ़ ख़ुद ही ख़ुदा के सिवा किसी की ख़ुदाई मानने के लिए तैयार न था, बल्कि दूसरों से भी खुल्लम-खुल्ला कहता फिरता था कि एक अल्लाह के सिवा तुम्हारा कोई मालिक और आक़ा नहीं है। सबकी आक़ाई व ख़ुदावन्दी का तख़्ता उलट दो और सिर्फ़ उस एक के बन्दे बनकर रहो। यही वजह है कि हज़रत इबराहीम (अलै०) को किसी जगह चैन न मिला। सालों बेघर-बेवतन इधर-उधर फिरते रहे। कभी कनआन की बस्तियों में हैं तो कभी मिस्र में और कभी अरब के रेगिस्तान में। इसी तरह सारी जवानी बीत गई और काले बाल सफ़ेद हो गए।

औलाद और उसकी तरबियत

आख़िरी उम्र में जब 90 वर्ष पूरे होने में सिर्फ़ चार साल बाक़ी थे और औलाद से मायूसी हो चुकी थी, अल्लाह ने औलाद दी, लेकिन इस अल्लाह के बन्दे को अब भी यह फ़िक्र न हुई कि ख़ुद बेघर इधर-उधर फिर रहा हूँ तो अब कम से कम अपने बच्चों ही को दुनिया कमाने के क़ाबिल बनाऊँ और उन्हें किसी ऐसे काम पर लगा जाऊँ कि रोटी का सहारा मिल जाए। नहीं, उस बूढ़े मुसलमान को फ़िक्र थी तो यह थी कि जिस मिशन को फैलाने में ख़ुद उसने अपनी उम्र खपा दी थी, काश, कोई ऐसा हो जो उसके मरने के बाद भी इस मिशन को फैलाता रहे! इसी ग़रज़ के लिए वह अल्लाह से औलाद की आरज़ू करता था और जब अल्लाह ने औलाद दी तो उसने यही चाहा कि अपने काम को जारी रखने के लिए उन्हें तैयार करे। इस कामिल इनसान की ज़िन्दगी एक सच्चे और असली मुसलमान की ज़िन्दगी थी। शुरू जवानी में होश सँभालने के बाद ही जब उसने अपने ख़ुदा को पहचाना और पा लिया तो ख़ुदा ने उससे कहा था कि ''असलिम'' यानी इस्लाम ले आ, अपने आपको मेरे सुपुर्द कर दे, मेरा होकर रह। तब उसने जवाब में यह वचन दिया था—

أَسْلَمْتُ لِرَبِّ الْعٰلَمِيْنَ۝

यानी, मैंने इस्लाम क़बूल किया और सारे आलम के रब का हो गया, मैंने अपने आपको उसके सुपुर्द कर दिया।

(क़ुरआन, 2:13)

इस क़ौल व क़रार को उस सच्चे शख़्स ने तमाम उम्र पूरी पाबन्दी के साथ निबाहकर दिखा दिया। उसने तमाम जगत् के पालनहार की ख़ातिर सदियों के बाप-दादा के मज़हब और उसकी रस्मों और अक़ीदों को छोड़ा, दुनिया के सारे फ़ायदों को छोड़ा, अपनी जान को आग के ख़तरे में डाला, जिलावतनी की मुसीबतें सहीं, मुल्क-मुल्क की ख़ाक छानी, अपनी ज़िंदगी का एक-एक लम्हा रब्बुल आलमीन की इताअत और उसके दीन की तबलीग़ में लगा दिया और बुढ़ापे में जब औलाद नसीब हुई तो उसके लिए भी यही दीन और यही काम पसन्द किया।

सबसे बड़ी आज़माइश

मगर इन आज़माइशों के बाद एक और आख़िरी आज़माइश बाक़ी रह गई थी, जिसके बग़ैर यह फ़ैसला न हो सकता था कि यह आदमी दुनिया की हर चीज़ से बढ़कर रब्बुल आलमीन से मुहब्बत रखता है और वह आज़माइश यह थी कि इस बुढ़ापे में, जबकि सारी मायूसी के बाद उसे औलाद नसीब हुई, अपने इकलौते बेटे को रब्बुल आलमीन की ख़ातिर क़ुरबान कर सकता है या नहीं। चुनांचे यह आज़माइश भी कर डाली गई और जब इशारा पाते ही वह अपने बेटे को अपने हाथ से ज़बह करने पर आमादा हो गया तब फ़ैसला फ़रमा दिया गया कि हाँ, अब तुमने अपने 'मुसलिम' (फ़रमाबरदार) होने के दावे को बिलकुल सच्चा कर दिखाया। अब तुम इस क़ाबिल हो कि तुम्हें सारी दुनिया का इमाम बनाया जाए। इसी बात को क़ुरआन में इस तरह बयान किया गया है—

सारी दुनिया के इमाम बना दिए गए

وَاِذِ ابْتَلٰٓى اِبْرٰهٖمَ رَبُّهٗ بِكَلِمٰتٍ فَاَتَمَّهُنَّ ۭ قَالَ اِنِّىْ جَاعِلُكَ لِلنَّاسِ

اِمَامًا ۭ قَالَ وَمِنْ ذُرِّيَّتِىْ ۭ قَالَ لَا يَنَالُ عَهْدِى الظّٰلِمِيْنَ○

> और जब इबराहीम को उसके रब ने कुछ बातों में आज़माया, और वह उनमें पूरा उतर गया तो फ़रमाया कि मैं तुमको इनसानों का इमाम (पेशवा) बनाता हूँ। उसने अर्ज़ किया: और मेरी औलाद के बारे में क्या हुक्म है? जवाब दिया: उनमें से जो ज़ालिम होंगे उन्हें मेरा अहद नहीं पहुँचता। (क़ुरआन, 2:124)

इस तरह हज़रत इबराहीम (अलै०) को दुनिया की पेशवाई सौंपी गई और वे इस्लाम की आलमगीर तहरीक के रहनुमा बनाए गए। अब उनको इस तहरीक को फैलाने के लिए ऐसे आदमियों की ज़रूरत पेश आई जो अलग-अलग इलाक़ों को सँभालकर बैठ जाएँ और उनके ख़लीफ़ा या नायब की हैसियत से काम करें। इस काम में तीन आदमी उनके लिए सबसे बड़ा सहारा साबित हुए। एक उनके भतीजे हज़रत लूत (अलै०) दूसरे उनके बड़े लड़के हज़रत इसमाईल (अलै०) जिन्होंने यह सुनकर कि रब्बुलआलमीन उनकी जान की क़ुरबानी चाहता है, ख़ुद अपनी गरदन ख़ुशी-ख़ुशी छुरी के नीचे रख दी और तीसरे उनके छोटे लड़के हज़रत इसहाक़ (अलै०)।

हज़रत लूत (अलै०) को पूर्वी उर्दुन भेजा

भतीजे को आपने सदूम के इलाक़े में बिठाया जिसको आजकल पूर्वी उर्दुन (ट्रांसजोर्डेनिया) कहते हैं। यहाँ उस वक़्त की सबसे ज़्यादा दुष्ट क़ौम रहती थी, इसलिए उसकी इसलाह भी नज़र में थी और साथ ही दूर-दराज़ के इलाक़ों पर भी असर डालना मक़सद था क्योंकि ईरान, इराक़ और मिस्र के बीच आने-जानेवाले सब तिजारती क़ाफ़िले इसी इलाक़े से गुज़रते थे और यहाँ बैठकर दोनों तरफ़ तबलीग़ का सिलसिला जारी किया जा सकता था।

हज़रत इसहाक़ (अलै०) को फ़िलस्तीन भेजा

छोटे लड़के हज़रत इसहाक़ (अलै०) को कनआन के इलाक़े में आबाद किया जिसको आजकल फ़िलस्तीन कहते हैं। यह इलाक़ा शाम और मिस्र के बीच में आबाद है और समुद्र के किनारे होने की वजह से दूसरे मुल्कों पर भी यहाँ से असर डाला जा सकता था। यहीं से हज़रत इसहाक़ के

बेटे हज़रत याक़ूब (अलै०) (जिनका नाम इसराईल भी था) और पोते हज़रत यूसुफ़ (अलै०) की बदौलत इस्लाम की तहरीक मिस्र तक पहुँची।

हज़रत इसमाईल (अलै०) को हिजाज़ में रखा

बड़े लड़के हज़रत इसमाईल (अलै०) को हिजाज़ में मक्के के मक़ाम पर रखा और एक मुद्दत तक ख़ुद उनके साथ रहकर अरब के तमाम इलाक़ों में इस्लाम की तालीम फैलाई।

काबा की तामीर

फिर यही दोनों बाप-बेटों ने इस्लाम की तहरीक का वह मरकज़ (केन्द्र) बनाया जो "काबा" के नाम से आज सारी दुनिया में मशहूर है। इस मरकज़ का चुनाव अल्लाह तआला ने ख़ुद किया था और उसकी बुनियाद रखने की जगह ख़ुद मुक़र्रर की थी। यह इमारत सिर्फ़ एक इबादतगाह ही न थी, जैसे मसजिदें हुआ करती हैं, बल्कि पहले दिन ही से इसको दीने इस्लाम की आलमी तहरीक की तबलीग़ व इशाअत का मरकज़ क़रार दिया गया था और इसका मक़सद यह था कि एक ख़ुदा को माननेवाले हर जगह से खिंच-खिंचकर यहाँ इकट्ठे हुआ करें, मिलकर ख़ुदा की इबादत करें और इस्लाम का पैग़ाम लेकर फिर अपने-अपने मुल्कों को वापस जाएँ। यही वह इजतिमा था जिसका नाम "हज" रखा गया। इसकी पूरी तफ़सील कि यह मरकज़ किस तरह बना, किन जज़बात और किन दुआओं के साथ दोनों बाप-बेटों ने इस इमारत की दीवारें उठाईं और कैसे हज शुरू किया गया, क़ुरआन मजीद में यूँ बयान की गई है—

إِنَّ أَوَّلَ بَيْتٍ وُّضِعَ لِلنَّاسِ لَلَّذِىْ بِبَكَّةَ مُبٰرَكًا وَّهُدًى لِّلْعٰلَمِيْنَ ۝ فِيْهِ
اٰيٰتٌۢ بَيِّنٰتٌ مَّقَامُ اِبْرَاهِيْمَ ۚ وَمَنْ دَخَلَهٗ كَانَ اٰمِنًا ۝

यक़ीनन पहला घर जो लोगों के लिए मुक़र्रर किया गया वही था जो मक्का में बना, बरकतवाला घर और तमाम दुनियावालों के लिए हिदायत का मरकज़। इसमें अल्लाह की खुली हुई निशानियाँ हैं, मक़ामे इबराहीम है और जो उसमें दाख़िल हो जाता है उसको

शान्ति मिल जाती है। (क़ुरआन, 3:96-97)

اَوَلَمْ يَرَوْا اَنَّا جَعَلْنَا حَرَمًا آمِنًا وَيُتَخَطَّفُ النَّاسُ مِنْ حَوْلِهِمْ○

क्या लोगों ने देखा नहीं कि हमने कैसा पुरअमन हरम बनाया है, हालाँकि उसके चारों ओर लोग उचक लिए जाते हैं। (क़ुरआन, 29:67)

(यानी जबकि अरब में हर तरफ़ लूट-मार, क़त्ल, ग़ारतगरी और जंग व जदल का बाज़ार गर्म था, इस हरम में हमेशा अमन ही रहा, यहाँ तक कि वहशी बद्दू तक उसकी हद में अपने बाप के क़ातिल को भी देख लेते तो उसपर हाथ उठाने की हिम्मत न करते।)

हज़रत इबराहीम (अलै०) की दुआएँ

وَاِذْ جَعَلْنَا الْبَيْتَ مَثَابَةً لِّلنَّاسِ وَاَمْنًا ط وَاتَّخِذُوْا مِنْ مَّقَامِ اِبْرَاهِيْمَ مُصَلًّى ط وَعَهِدْنَا اِلٰى اِبْرَاهِيْمَ وَاِسْمٰعِيْلَ اَنْ طَهِّرَا بَيْتِىَ لِلطَّآئِفِيْنَ وَالْعَاكِفِيْنَ وَالرُّكَّعِ السُّجُوْدِ○ وَاِذْ قَالَ اِبْرَاهِيْمُ رَبِّ اجْعَلْ هٰذَا بَلَدًا آمِنًا وَّارْزُقْ اَهْلَهٗ مِنَ الثَّمَرَاتِ مَنْ آمَنَ مِنْهُمْ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ط قَالَ وَمَنْ كَفَرَ فَاُمَتِّعُهٗ قَلِيْلًا ثُمَّ اَضْطَرُّهٗ اِلٰى عَذَابِ النَّارِ ط وَبِئْسَ الْمَصِيْرُ○ وَاِذْ يَرْفَعُ اِبْرَاهِيْمُ الْقَوَاعِدَ مِنَ الْبَيْتِ وَاِسْمٰعِيْلُ ط رَبَّنَا تَقَبَّلْ مِنَّا ط اِنَّكَ اَنْتَ السَّمِيْعُ الْعَلِيْمُ○ رَبَّنَا وَاجْعَلْنَا مُسْلِمَيْنِ لَكَ وَمِنْ ذُرِّيَّتِنَآ اُمَّةً مُّسْلِمَةً لَّكَ ص وَاَرِنَا مَنَاسِكَنَا وَتُبْ عَلَيْنَا ج اِنَّكَ اَنْتَ التَّوَّابُ الرَّحِيْمُ○ رَبَّنَا وَابْعَثْ فِيْهِمْ رَسُوْلًا مِّنْهُمْ يَتْلُوْا عَلَيْهِمْ اٰيٰتِكَ وَيُعَلِّمُهُمُ الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ وَيُزَكِّيْهِمْ ط اِنَّكَ اَنْتَ الْعَزِيْزُ الْحَكِيْمُ○

और जबकि हमने इस घर को लोगों के लिए मरकज़ व मर्जा और अमन की जगह बनाया और हुक्म दिया कि इबराहीम की इबादत की जगह को नमाज़ की जगह बना लो और इबराहीम व इसमाईल को हिदायत की कि मेरे घर को तवाफ़ करनेवाले और ठहरनेवाले और रुकू व सजदा करनेवाले लोगों के लिए पाक-साफ़ रखो और जबकि इबराहीम ने दुआ की कि परवरदिगार! इस शहर को पुरअम्न बना दे और यहाँ के बाशिन्दों को फलों की रोज़ी दे, जो उनमें से अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान लानेवाला हो। .... और जब इबराहीम और इसमाईल इस घर की बुनियादें उठा रहे थे तो दुआ करते जाते थे कि परवरदिगार! हमारी इस कोशिश को क़बूल फ़रमा, तू सब कुछ सुनता और जानता है। परवरदिगार! और तू हम दोनों को अपना मुसलिम (फ़रमाँबरदार) बना और हमारी नस्ल से एक ऐसी क़ौम उठा जो तेरी मुसलिम हो और हमें अपनी इबादत के तरीक़े बता और हमपर इनायत की नज़र रख। तू बड़ा माफ़ करनेवाला और रहम फ़रमानेवाला है। परवरदिगार! और तू इन लोगों में इन्हीं की क़ौम से एक ऐसा रसूल भेजियो जो उन्हें तेरी आयतें सुनाए और उनको किताब और हिकमत की तालीम दे और उनके अख़लाक़ दुरुस्त करे। बेशक! तू बड़ी कुदरतवाला और बड़ा हकीम है।

(कुरआन, 2:125-129)

وَإِذْ قَالَ إِبْرَاهِيمُ رَبِّ اجْعَلْ هٰذَا الْبَلَدَ آمِنًا وَّاجْنُبْنِي وَبَنِيَّ أَنْ نَّعْبُدَ الْأَصْنَامَ ○ رَبِّ إِنَّهُنَّ أَضْلَلْنَ كَثِيرًا مِّنَ النَّاسِ ۚ فَمَنْ تَبِعَنِي فَإِنَّهُ مِنِّي ۚ وَمَنْ عَصَانِي فَإِنَّكَ غَفُورٌ رَّحِيمٌ ○ رَبَّنَا إِنِّي أَسْكَنْتُ مِنْ ذُرِّيَّتِي بِوَادٍ غَيْرِ ذِي زَرْعٍ عِنْدَ بَيْتِكَ الْمُحَرَّمِ ۙ رَبَّنَا لِيُقِيمُوا الصَّلٰوةَ فَاجْعَلْ أَفْئِدَةً مِّنَ النَّاسِ تَهْوِي إِلَيْهِمْ وَارْزُقْهُمْ مِّنَ الثَّمَرٰتِ لَعَلَّهُمْ يَشْكُرُونَ ○

और जबकि इबराहीम ने दुआ की कि ऐ पालनहार! इस शहर को पुरअमन बना और मुझको और मेरे बच्चों को बुतपरस्ती से बचा। परवरदिगार! इन बुतों ने बहुत-से लोगों को गुमराह किया है। सो जो कोई मेरे तरीक़े की पैरवी करे, तो मेरा है और जो मेरे तरीक़े से फिर जाए तो यक़ीनन तू माफ़ करनेवाला और रहमान है। परवरदिगार! मैंने अपनी नस्ल के एक हिस्से को तेरे इस इज़्ज़तवाले घर के पास वीरान व सुनसान घाटी में ला बसाया है ताकि ये नमाज़ का निज़ाम क़ायम करें। तो ऐ रब! तू लोगों के दिलों में ऐसा शौक़ डाल कि वे उनकी तरफ़ खिंचकर आएँ और उनको फलों से रोज़ी पहुँचा। उम्मीद है कि ये तेरे शुक्रगुज़ार बनेंगे।

(क़ुरआन, 14:35-37)

وَاِذْ بَوَّأْنَا لِاِبْرَاهِيْمَ مَكَانَ الْبَيْتِ اَنْ لَّا تُشْرِكْ بِيْ شَيْئًا وَّطَهِّرْ بَيْتِيَ

لِلطَّائِفِيْنَ وَالْقَائِمِيْنَ وَالرُّكَّعِ السُّجُوْدِ ۝ وَاَذِّنْ فِي النَّاسِ بِالْحَجِّ

يَأْتُوْكَ رِجَالًا وَّعَلٰى كُلِّ ضَامِرٍ يَّأْتِيْنَ مِنْ كُلِّ فَجٍّ عَمِيْقٍ ۝ لِّيَشْهَدُوْا

مَنَافِعَ لَهُمْ وَيَذْكُرُوا اسْمَ اللّٰهِ فِيْٓ اَيَّامٍ مَّعْلُوْمَاتٍ عَلٰى مَا رَزَقَهُمْ مِّنْۢ

بَهِيْمَةِ الْاَنْعَامِ ۚ فَكُلُوْا مِنْهَا وَاَطْعِمُوا الْبَآئِسَ الْفَقِيْرَ ۝

और जबकि हमने इबराहीम के लिए इस घर की जगह मुक़र्रर की इस हिदायत के साथ कि यहाँ शिर्क न करो, और मेरे घर को तवाफ़ करनेवालों और क़याम करनेवालों और रुकू और सजदा करनेवालों के लिए पाक-साफ़ रखो, और लोगों में हज की आम मुनादी कर दो, ताकि तुम्हारे पास आएँ, भले ही पैदल आएँ या हर दूर-दराज़ की जगहों से दुबली ऊँटनियों पर आएँ, ताकि यहाँ आकर वे देखें कि उनके लिए कैसे-कैसे दीनी व दुनियवी फ़ायदे हैं और इन कुछ दिनों में इन जानवरों पर जो अल्लाह ने उनको दिए हों, अल्लाह का नाम लें (यानी क़ुरबानी करें) और इसमें

से ख़ुद भी खाएँ और तंगदस्त व मुहताज लोगों को भी खिलाएँ।
(क़ुरआन, 22:26-28)

मुसलमान भाइयो! यह है उस हज के शुरू होने की कहानी जिसे इस्लाम का पाँचवाँ सुतून क़रार दिया गया है। इससे आपको मालूम हो गया होगा कि दुनिया में सबसे पहले जिस नबी को इस्लाम की आलमी दावत फैलाने के लिए भेजा गया था, मक्का उसके मिशन का मरकज़ था। काबा वह जगह थी जहाँ से यह तबलीग़ दुनिया के कोने-कोने में पहुँचाई जाती थी और हज का तरीक़ा इसलिए मुक़र्रर किया गया था कि जो लोग एक ख़ुदा की बन्दगी का इक़रार करें और उसकी इताअत में दाख़िल हों, वे भले ही किसी क़ौम और किसी मुल्क से ताल्लुक़ रखते हों, सबके सब उस एक मरकज़ से वाबस्ता हो जाएँ और हर साल यहाँ इकट्ठा होकर इस मरकज़ का तवाफ़ करें, मानो ज़ाहिर में अपनी इस अन्दरूनी कैफ़ियत का नक़्शा जमा लें कि उनकी ज़िन्दगी उस पहिए की तरह है जो हमेशा अपनी धुरी के चारों ओर ही घूमता है।

हज की तारीख़

मुसलमान भाइयो! पिछले ख़ुतबे में आपको यह बता चुका हूँ कि हज की शुरूआत किस तरह और किस मक़सद के लिए की गई थी। यह भी आपको बता चुका हूँ कि हज़रत इबराहीम (अलै०) ने मक्के को इस इस्लामी तहरीक का मरकज़ बनाया था और यहाँ अपने सबसे बड़े बेटे हज़रत इसमाईल (अलै०) को बिठाया था ताकि आपके बाद वह इस आन्दोलन को जारी रखे।

इबराहीम (अलै०) की औलाद में बुतपरस्ती का रिवाज

ख़ुदा ही बेहतर जानता है कि हज़रत इसमाईल (अलै०) के बाद उनकी औलाद कब तक उस दीन पर क़ायम रही जिसपर उनके बाप उनको छोड़ गए थे। बहरहाल कुछ सदियों में ये लोग अपने बुज़ुर्गों की तालीम और उनके तरीक़े सब भूल-भाल गए और धीरे-धीरे उनमें वे सब गुमराहियाँ पैदा हो गईं जो दूसरी जाहिल क़ौमों में फैली हुई थीं। इसी काबा में, जिसे एक ख़ुदा की इबादत के लिए दावत व तबलीग़ का मरकज़ बनाया गया था, सैकड़ों बुत रख दिए गए थे और ग़ज़ब यह है कि ख़ुद हज़रत इबराहीम और हज़रत इसमाईल (अलै०) का भी बुत (Statue) बना डाला गया, जिनकी सारी ज़िन्दगी बुतों ही की परस्तिश मिटाने में सर्फ़ हुई थी। इबराहीम हनीफ़ की औलाद ने लात, मनात, हुबल, नस्र, यग़ूस, उज़्ज़ा, असाफ़, नायला और ख़ुदा जाने किस-किस नाम के बुत बनाए और उनको पूजा। चाँद, अतारिद (बुध ग्रह), ज़ुह्रा (वृहस्पति ग्रह), ज़ुहल और पता नहीं किस-किस सितारे को पूजा। जिन्न, भूत, प्रेत, फ़रिश्तों और अपने मुर्दा बुज़ुर्गों की रूहों को पूजा। जिहालत का ज़ोर यहाँ तक बढ़ा कि जब घर से निकलते और अपना ख़ानदानी बुत उन्हें पूजने को न मिलता तो रास्ता चलते में जो अच्छा-सा चिकना पत्थर मिल जाता, उसी को पूज डालते और पत्थर भी न मिलता तो मिट्टी को पानी से गूँधकर एक पिण्ड-सा बना लेते और बकरी का दूध छिड़कते ही वह बेजान पिण्ड उनका ख़ुदा

बन जाता। जिस महन्तगिरी और पंडिताई के ख़िलाफ़ उनके बाप इबराहीम (अलै०) ने इराक़ में लड़ाई की थी, वह ख़ुद उन्हीं के घर में घुस आई। काबा को उन्होंने बुतख़ाना बना लिया। ख़ुद वहाँ के महन्त बनकर बैठ गए। हज को तीर्थयात्रा बनाकर उस घर से जो तौहीद की तबलीग़ के लिए बना था, बुतपरस्ती की तबलीग़ करने लगे और पुजारियों के सारे हथकंडे इख़तियार करके उन्होंने अरब के दूर व नज़दीक से आनेवाले मुसाफ़िरों से नज़र-चढ़ावे वुसूल करने शुरू कर दिए। इस तरह वह सारा काम बरबाद हो गया जो इबराहीम व इसमाईल (अलै०) करके गए थे और जिस मक़सद के लिए उन्होंने हज का तरीक़ा जारी किया था, उसकी जगह कुछ और ही काम होने लगे।

हज में बिगाड़ की शक्लें

शायरों के मुक़ाबले

उस जाहिलियत के ज़माने में हज की जो हालत थी, उसका अन्दाज़ा आप इससे कर सकते हैं कि यह एक मेला था जो हर साल लगता था। बड़े-बड़े क़बीले अपने-अपने जत्थों के साथ यहाँ आते और अपने-अपने पड़ाव अलग-अलग डालते, हर क़बीले का शायर या भाँड अपनी और अपने क़बीलेवालों की बहादुरी, नामवरी, इज़्ज़त, ताक़त और सख़ावत की तारीफ़ में ज़मीन व आसमान के कुलाबे मिलाता और हर एक डींगें मारने में दूसरे से बढ़ जाने की कोशिश करता, यहाँ तक कि एक-दूसरे की बुराई करने तक की नौबत पहुँच जाती।

झूठी सख़ावत के मुजाहिदे

फिर फ़ैयाज़ी का मुक़ाबला होता। हर क़बीले के सरदार अपनी बड़ाई जताने के लिए देगें चढ़ाते और एक-दूसरे को नीचा दिखाने के लिए ऊँट पर ऊँट काटते चले जाते। इस फ़िज़ूलख़र्ची से उन लोगों का मक़सद इसके सिवा कुछ न था कि इस मेले के मौक़े पर उनका नाम सारे अरब में ऊँचा हो जाए और ये चर्चे हों कि फ़लाँ साहब ने इतने ऊँट ज़बह किए और फ़लाँ साहब ने इतनों को खाना खिलाया। इन मजलिसों में राग-रंग, शराबख़ोरी,

ज़िना और हर क़िस्म की फ़हशकारी ख़ूब धड़ल्ले से होती थी और ख़ुदा का ख़याल मुशकिल ही से किसी को आता था।

नंगा तवाफ़

काबे के गिर्द तवाफ़ होता था। मगर किस तरह? औरत-मर्द सब नंगे होकर घूमते थे और कहते थे कि हम उसी हालत में ख़ुदा के सामने जाएँगे, जिसमें हमारी माओं ने हमें जना है। इबराहीम (अलै०) की मसजिद में इबादत होती थी। मगर कैसी? तालियाँ पीटी जातीं, सीटियाँ बजाई जातीं और नरसिंघे फूँके जाते। ख़ुदा का नाम पुकारा जाता। मगर किस शान से? कहते थे—

لَبَّيْكَ اَللّٰهُمَّ لَبَّيْكَ لَبَّيْكَ لاَ شَرِيْكَ لَكَ إِلاَّ شَرِيْكًا هُوَ لَكَ تَمْلِكُهُ وَمَا مَلَكَ.

> मैं हाज़िर हूँ, मेरे अल्लाह! मैं हाज़िर हूँ, तेरा कोई शरीक नहीं, मगर वह जो तेरा होने की वजह से तेरा शरीक है। तू उसका भी मालिक है और उसकी मिलकियत का भी मालिक है।''

कुरबानी का तसव्वुर

ख़ुदा के नाम पर वे कुरबानियाँ भी करते थे, मगर किस बदतमीज़ी के साथ? कुरबानी का ख़ून काबा की दीवारों से लथेड़ा जाता और गोश्त दरवाज़े पर डाला जाता, इस ख़याल से कि (अल्लाह की पनाह) यह गोश्त और ख़ून ख़ुदा को मतलूब (अपेक्षित) है।

हराम महीनों की बेहुरमती

हज़रत इबराहीम (अलै०) ने हज के चार महीनों को हराम ठहराया था और हिदायत की थी कि इन महीनों में किसी प्रकार की लड़ाई-झगड़ा न हो। ये लोग इन हराम महीनों का किसी हद तक ख़याल रखते थे, मगर जब लड़ने को जी चाहता, तो ढिठाई के साथ एक साल हराम के महीने को हलाल कर लेते और दूसरे साल उसका बदला कर देते थे।

कुछ ख़ुद की लगाई पाबंदियाँ

फिर जो लोग अपने मज़हब में नेक-नीयत थे, उन्होंने भी जिहालत की वजह से अजीब-अजीब तरीक़े ईजाद कर लिए थे। कुछ लोग बिना रास्ते का सामान लिए हज को निकल खड़े होते और माँगते-खाते चले जाते थे। उनके नज़दीक यह नेकी का काम था। कहते थे कि हम ख़ुदा पर भरोसा करनेवाले हैं। ख़ुदा के घर की तरफ़ जा रहे हैं। फिर दुनिया का सामान क्यों लें? आम तौर से हज के सफ़र में तिजारत करने या कमाई के लिए मेहनत व मज़दूरी को नाजायज़ समझा जाता था। बहुत-से लोग हज में खाना-पीना छोड़ देते थे और उसे भी इबादत का हिस्सा समझते थे। कुछ लोग हज को निकलते तो बातचीत करना छोड़ देते। इसका नाम ''हजे मुसमित'' यानी ''गूँगा हज'' था। इसी क़िस्म की और ग़लत रस्में बेशुमार थीं, जिनका हाल बयान करके मैं आपका वक़्त बरबाद नहीं करना चाहता।

दुआए ख़लील (अलै०) की क़बूलियत

यह हालत तक़रीबन दो हज़ार साल तक क़ायम रही। इस लम्बी मुद्दत में कोई नबी अरब में पैदा नहीं हुआ, न किसी नबी की असल तालीम अरब के लोगों तक पहुँची। आख़िरकार हज़रत इबराहीम (अलै०) की उस दुआ के पूरा होने का वक़्त आया जो उन्होंने काबा की दीवारें उठाते वक़्त अल्लाह से माँगी थी। यानी—

> ''परवरदिगार! इनके बीच एक पैग़म्बर ख़ुद इन्हीं की क़ौम में से भेजियो, जो इन्हें तेरी आयतें सुनाए और किताब और हिकमत की तालीम दे और इनके अख़लाक़ दुरुस्त करे।''

चुनाँचे हज़रत इबराहीम (अलै०) की औलाद से फिर एक इनसाने कामिल उठा, जिसका पाक नाम 'मुहम्मद (सल्ल०) बिन अब्दुल्लाह' था।

जिस तरह हज़रत इबराहीम (अलै०) ने पंडितों और महन्तों के ख़ानदान में आँख खोली थी, उसी तरह हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने भी उस ख़ानदान में आँख खोली जो सदियों से काबा के तीर्थ का महन्त बना हुआ था। जिस तरह हज़रत इबराहीम (अलै०) ने अपने हाथ से ख़ुद अपने ख़ानदान की महन्ती पर चोट लगाई, उसी तरह हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने भी उसपर चोट लगाई और सिर्फ़ चोट ही नहीं लगाई, बल्कि हमेशा के लिए उसकी जड़ काटकर रख दी। फिर जिस तरह हज़रत इबराहीम (अलै०) ने तमाम ग़लत अक़ीदों और तमाम झूठे ख़ुदाओं की ख़ुदाई मिटाने के लिए जिद्दोजुहद की थी और एक ख़ुदा की बंदगी फैलाने की कोशिश की थी, बिलकुल वही काम हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने भी किया; और फिर उसी असली और बेलौस (विशुद्ध) दीन को ताज़ा कर दिया जिसे हज़रत इबराहीम (अलै०) लेकर आए थे। इक्कीस साल की मुद्दत में जब यह सारा काम आप (सल्ल०) पूरा कर चुके तो अल्लाह के हुक्म से आप (सल्ल०) ने फिर उसी तरह काबा को सारी दुनिया के ख़ुदापरस्तों का मरकज़ बनाने का एलान किया और फिर वही मुनादी की कि सब तरफ़ से हज के लिए इस मरकज़ की तरफ़ जाओ।

وَلِلّٰهِ عَلَى النَّاسِ حِجُّ الْبَيْتِ مَنِ اسْتَطَاعَ إِلَيْهِ سَبِيْلاً ۚ وَمَنْ كَفَرَ فَإِنَّ اللّٰهَ غَنِيٌّ عَنِ الْعٰلَمِيْنَ۝

और लोगों पर अल्लाह का हक़ है कि जो कोई इस घर तक आने की क़ुदरत (सामर्थ्य) रखता हो, वह हज के लिए आए, फिर जो कोई कुफ़्र करे (यानी सामर्थ्य के होते हुए भी न आए) तो अल्लाह तमाम दुनियावालों से बेनियाज़ है। (क़ुरआन, 3:97)

सुन्नते इबराहीम (अलै०) को ज़िन्दा करना

इस तरह हज को नए सिरे से शुरू करने के साथ ही जाहिलियत की वे सारी रस्में भी बिलकुल मिटा दी गईं जो पिछले दो हज़ार वर्ष में रिवाज पा गई थीं।

बुतपरस्ती का ख़ात्मा

काबे के सारे बुत तोड़ दिए गए, ख़ुदा के सिवा दूसरों की जो पूजा हो रही थी, वह पूरी तरह रोक दी गई। सारी जाहिलियत की रस्में मिटा दी गईं। मेले-ठेले और तमाशे बन्द कर दिए गए और हुक्म दिया गया कि अब जो इबादत का तरीक़ा बताया जा रहा है, उसी तरीक़े से यहाँ अल्लाह की इबादत करो—

وَاذْكُرُوْهُ كَمَا هَدٰكُمْ ۚ وَاِنْ كُنْتُمْ مِّنْ قَبْلِهٖ لَمِنَ الضَّآلِّيْنَ ○

और अल्लाह को याद करो, उस तरह जैसी तुम्हें अल्लाह ने हिदायत की है, वरना इससे पहले तो तुम गुमराह लोग थे। (क़ुरआन, 2:198)

बेहूदा कामों पर रोक

सभी बेहूदा कामों को सख़्ती से रोक दिया गया—

فَلَا رَفَثَ وَلَا فُسُوْقَ ۙ وَلَا جِدَالَ فِى الْحَجِّ ○

हज में न शहवानी काम किए जाएँ, न फिस्क़ व फुजूर हो, न लड़ाई-झगड़े हों। (क़ुरआन, 2:197)

शायरी के दंगल, बाप-दादा के कारनामों पर फ़ख़्र, झूठी तारीफ़ और दूसरों की बुराई करने के मुक़ाबले सब बन्द कर दिए गए और हुक्म दिया गया—

فَاِذَا قَضَيْتُمْ مَّنَاسِكَكُمْ فَاذْكُرُوا اللّٰهَ كَذِكْرِكُمْ اٰبَآءَكُمْ اَوْ اَشَدَّ ذِكْرًا ○

फिर जब अपने हज के मनासिक अदा कर चुको तो याद करो अल्लाह को जिस तरह तुम अपने बाप-दादों को याद करते थे, बल्कि उससे भी बढ़ कर। (क़ुरआन, 2:200)

दिखावे की फ़य्याज़ी का ख़ात्मा

फ़य्याज़ी के मुक़ाबले जो सिर्फ़ दिखावे और नाम के लिए होते थे, उन

सबका ख़ात्मा कर दिया गया और उसकी जगह वही हज़रत इबराहीम (अलै०) के ज़माने का तरीक़ा फिर ज़िन्दा किया गया कि सिर्फ़ अल्लाह के नाम पर जानवर ज़बह किए जाएँ ताकि ख़ुशहाल लोगों की क़ुरबानी से ग़रीब से ग़रीब हाजियों को भी खाने का मौक़ा मिल जाए—

كُلُوْا وَاشْرَبُوْا وَلَا تُسْرِفُوْا، إِنَّهٗ لَا يُحِبُّ الْمُسْرِفِيْنَ ۝

खाओ-पियो, मगर फ़िज़ूलख़र्ची न करो कि अल्लाह फ़िज़ूल ख़र्च करनेवालों को पसन्द नहीं करता। (क़ुरआन, 7:31)

فَاذْكُرُوْا اسْمَ اللّٰهِ عَلَيْهَا صَوَآفَّ ۚ فَإِذَا وَجَبَتْ جُنُوْبُهَا فَكُلُوْا مِنْهَا وَاَطْعِمُوْا الْقَانِعَ وَالْمُعْتَرَّ ۝

इन जानवरों को ख़ालिस अल्लाह के लिए उसी के नाम पर क़ुरबान करो, फिर जब उनकी पीठें ज़मीन पर ठहर जाएँ (यानी जब जान पूरी तरह निकल चुके और हरकत बाक़ी न रहे) तो ख़ुद भी उनमें से खाओ और क़िनाअत करनेवालों को भी खिलाओ और ज़रूरतमंद सायल को भी। (क़ुरआन, 22:36)

क़ुरबानी का ख़ून और गोश्त लथेड़ना मना

क़ुरबानी का ख़ून काबा की दीवारों से लथेड़ने और गोश्त लाकर डालने से मना कर दिया गया और कहा गया—

لَنْ يَّنَالَ اللّٰهَ لُحُوْمُهَا وَلَا دِمَآؤُهَا وَلٰكِنْ يَّنَالُهُ التَّقْوٰى مِنْكُمْ ۝

अल्लाह को इन जानवरों के गोश्त और ख़ून नहीं पहुँचते, बल्कि तुम्हारी परहेज़गारी व ख़ुदातरसी पहुँचती है। (क़ुरआन, 22:37)

नंगे होकर तवाफ़ की मनाही

नंगे होकर तवाफ़ करने से बिलकुल रोक दिया गया और कहा गया—

قُلْ مَنْ حَرَّمَ زِيْنَةَ اللّٰهِ الَّتِيْٓ اَخْرَجَ لِعِبَادِهٖ ۝

ऐ नबी! उनसे कहो कि किसने अल्लाह की उस ज़ीनत को हराम किया जो उसने अपने बन्दों के लिए निकाली थी (यानी लिबास)?
(क़ुरआन, 7:32)

قُلْ إِنَّ اللَّهَ لَا يَأْمُرُ بِالْفَحْشَاءِ ۝

(ऐ नबी!) कहो कि अल्लाह तो हरगिज़ बेहयाई का हुक्म नहीं देता। (क़ुरआन, 7:28)

يٰبَنِيٓ آدَمَ خُذُوا زِينَتَكُمْ عِنْدَ كُلِّ مَسْجِدٍ ۝

ऐ आदम की औलाद! हर इबादत के वक़्त अपनी ज़ीनत (यानी लिबास) पहने रहा करो। (क़ुरआन, 7:31)

हज के महीनों में उलट-फेर की मनाही

हज के महीनों का उलट-फेर करने और हराम महीनों को लड़ाई के लिए हलाल कर लेने से सख़्ती के साथ रोक दिया गया।

إِنَّمَا النَّسِيٓءُ زِيَادَةٌ فِي الْكُفْرِ يُضَلُّ بِهِ الَّذِينَ كَفَرُوا يُحِلُّونَهُ عَامًا وَّ
يُحَرِّمُونَهُ عَامًا لِّيُوَاطِئُوا عِدَّةَ مَا حَرَّمَ اللَّهُ فَيُحِلُّوا مَا حَرَّمَ اللَّهُ ۝

नसी (महीनों का फेर-बदल) तो कुफ़्र में और इज़ाफ़ा है (यानी कुफ़्र के साथ ढिठाई का इज़ाफ़ा है)। काफ़िर लोग इससे और ज़्यादा गुमराही में पड़ते हैं। एक साल एक महीने को हलाल कर लेते हैं और दूसरे साल इसके बदले में कोई दूसरा महीना हराम कर देते हैं ताकि जितने महीने अल्लाह ने हराम ठहराए हैं, उनकी तादाद तो पूरी कर दी जाए, मगर इस बहाने से दरअसल उस चीज़ को हलाल कर लिया जाए जिसे अल्लाह ने हराम किया था।
(क़ुरआन, 9:37)

सफ़र का ख़र्च लेने का हुक्म

सफ़र का ख़र्च लिए बिना हज के लिए निकलने से मना किया गया

और कहा गया—

تَزَوَّدُوا فَإِنَّ خَيْرَ الزَّادِ التَّقْوٰى۝

सफ़र का ख़र्च ज़रूर लो, क्योंकि (दुनिया में सफ़र का ख़र्च न लेना आख़िरत का सामान नहीं है) सबसे अच्छा आख़िरत का सामान तो तक़वा है। (क़ुरआन, 2:197)

हज में रोज़ी कमाने की इजाज़त

हज के सफ़र में कमाई न करने को जो नेकी का काम समझा जाता था और रोज़ी कमाने को नाजायज़ ख़याल किया जाता था, इस ख़याल को ग़लत साबित किया गया—

لَيْسَ عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ اَنْ تَبْتَغُوْا فَضْلاً مِّنْ رَّبِّكُمْ۝

कोई बात नहीं अगर तुम कारोबार के ज़रिए से अपने रब का फ़ज़्ल तलाश करते जाओ। (क़ुरआन, 2:198)

जाहिली रस्मों का ख़ात्मा

'गूँगे हज' और 'भूखे-प्यासे हज' से भी रोका गया और इसी तरह जाहिलियत की दूसरी तमाम रस्मों को मिटाकर हज को तक़वा, ख़ुदातरसी, पाकीज़गी और सादगी व दुर्वेशी का मुकम्मल नमूना बना दिया गया। हाजियों को हुक्म दिया गया कि जब अपने घरों से चलो तो अपने आपको दुनिया की तमाम गंदगियों से पाक कर लो, शह्‌वात को छोड़ दो, बीवियों के साथ भी उस ज़माने में शौहर-बीवी का-सा ताल्लुक़ न रखो। गाली-गलौच और तमाम बेहूदा कामों से परहेज़ करो।

मीक़ात मुक़र्रर

काबा की तरफ़ आनेवाले जितने रास्ते हैं, उन सबपर बीसियों मील दूर से एक-एक हद मुक़र्रर कर दी गई कि इस हद से आगे बढ़ने से पहले सब लोग अपने-अपने लिबास बदलकर इहराम का फ़क़ीराना लिबास पहन

लें, ताकि सब अमीर व ग़रीब एक से हो जाएँ, अलग-अलग क़ौमों के फ़र्क़ मिट जाएँ और सबके सब अल्लाह के दरबार में एक होकर, फ़क़ीर बनकर आजिज़ी की हालत में हाज़िर हों।

पुरअम्न माहौल की हिदायत

इहराम बाँधने के बाद इनसान का ख़ून बहाना तो दूर रहा, जानवरों तक का शिकार करना हराम कर दिया गया; ताकि अम्नपसन्दी पैदा हो, जंगलीपन दूर हो जाए और तबीअतों पर रूहानियत ग़ालिब हो। हज के चार महीने इसलिए हराम किए गए कि इस मुद्दत में कोई लड़ाई न हो, काबा को जानेवाले तमाम रास्तों में अम्न रहे और हरम की ज़ियारत करनेवालों को कोई न छेड़े। इस शान के साथ जब हाजी हरम में पहुँचें तो उनके लिए कोई मेला-ठेला, खेल-तमाशा, नाच-रंग वग़ैरह नहीं है, क़दम-क़दम पर ख़ुदा का ज़िक्र है, नमाज़ें हैं, इबादतें हैं, क़ुरबानियाँ हैं, काबे का तवाफ़ है और कोई पुकार है तो बस यह है—

एक ही नारा, तलबिया

لَبَّيْكَ اَللّٰهُمَّ لَبَّيْكَ، لَبَّيْكَ لَاشَرِيْكَ لَكَ لَبَّيْكَ إِنَّ الْحَمْدَ وَالنِّعْمَةَ لَكَ وَالْمُلْكَ، لَا شَرِيْكَ لَكَ.

हाज़िर हूँ मेरे अल्लाह! मैं हाज़िर हूँ, हाज़िर हूँ, तेरा कोई शरीक नहीं, मैं हाज़िर हूँ। बेशक तारीफ़ सब तेरे ही लिए है। नेमत सब तेरी ही है। सारी बादशाही तेरी है, तेरा कोई शरीक नहीं।

ऐसे ही पाक व साफ़, बेलौस, और मुख़लिसाना हज के बारे में नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

مَنْ حَجَّ لِلّٰهِ فَلَمْ يَرْفُثْ وَلَمْ يَفْسُقْ رَجَعَ كَيَوْمِ وَلَدَتْهُ اُمُّهٗ.

जिसने अल्लाह के लिए हज किया और उसमें शहवात और दूसरे गुनाहों से परहेज़ किया, वह इस तरह पलटा जैसे आज ही अपनी

माँ के पेट से पैदा हुआ है।

फ़रीज़-ए-हज की अहमियत

अब इससे पहले कि आपके सामने हज के फ़ायदे बयान किए जाएँ, यह भी बता देना ज़रूरी है कि यह 'फ़र्ज़' कैसा फ़र्ज़ है। क़ुरआन मजीद में अल्लाह तआला फ़रमाता है—

وَلِلّٰهِ عَلَى النَّاسِ حِجُّ الْبَيْتِ مَنِ اسْتَطَاعَ إِلَيْهِ سَبِيلًا ۚ وَمَنْ كَفَرَ فَإِنَّ اللّٰهَ غَنِيٌّ عَنِ الْعٰلَمِينَ ۝

और लोगों पर अल्लाह का हक़ है कि जो उस घर तक पहुँचने की क़ुदरत रखता हो, वह उसका हज करे और जिसने कुफ़्र किया, तो अल्लाह तमाम दुनियावालों से बेनियाज़ है।" (क़ुरआन, 3:97)

इस आयत में क़ुदरत रखने के बावजूद जान-बूझकर हज न करने को कुफ़्र कहा गया है। इसकी तशरीह नबी (सल्ल०) की इन दो हदीसों से होती है—

مَنْ مَّلَكَ زَادًا وَّرَاحِلَةً تُبَلِّغُهُ إِلٰى بَيْتِ اللّٰهِ وَلَمْ يَحُجَّ فَلَا عَلَيْهِ اَنْ يَّمُوْتَ يَهُوْدِيًّا اَوْ نَصْرَانِيًّا.

जो आदमी रास्ते का खाना और सवारी रखता हो, जिससे बैतुल्लाह (हरम) तक पहुँच सकता हो और फिर हज न करे तो उसका इस हालत पर मरना और यहूदी या ईसाई होकर मरना बिलकुल बराबर है।

مَنْ لَّمْ يَمْنَعْهُ مِنَ الْحَجِّ حَاجَةٌ ظَاهِرَةٌ اَوْ سُلْطَانٌ جَائِرٌ اَوْ مَرَضٌ حَابِسٌ فَمَاتَ وَلَمْ يَحُجَّ فَلْيَمُتْ إِنْ شَاءَ يَهُوْدِيًّا وَإِنْ شَاءَ نَصْرَانِيًّا.

जिसको न किसी बड़ी ज़रूरत ने हज से रोका हो, न किसी ज़ालिम हाकिम ने, न किसी रोकनेवाले मर्ज़ ने, और फिर उसने हज न किया हो और इसी हालत में उसे मौत आ जाए, तो उसे इख़्तियार

है भले ही वह यहूदी बनकर मरे या ईसाई बनकर।

और इसी की तफ़सीर (व्याख्या) हज़रत उमर (रज़ि०) ने की, जब कहा कि—

> जो लोग क़ुदरत रखने के बाद भी हज नहीं करते, मेरा जी चाहता है कि उनपर जिज़िया लगा दूँ, वे मुसलमान नहीं हैं, वे मुसलमान नहीं हैं।

अल्लाह के इस फ़रमान और रसूल (सल्ल०) व रसूल के ख़लीफ़ा की इस तशरीह (व्याख्या) से आपको अन्दाज़ा हो गया होगा कि यह फ़र्ज़ ऐसा फ़र्ज़ नहीं है कि जी चाहे तो अदा कीजिए और न चाहे तो टाल दीजिए। बल्कि यह ऐसा फ़र्ज़ है कि हर उस मुसलमान को, जो काबा तक जाने-आने का ख़र्च रखता हो और हाथ-पाँव से लाचार न हो, उम्र में एक बार उसे लाज़मी तौर पर अदा करना चाहिए, चाहे वह दुनिया के किसी कोने में हो और भले ही उसके ऊपर बाल-बच्चों की और अपने कारोबार या मुलाज़िमत वग़ैरह की कैसी ही ज़िम्मेदारियाँ हों। जो लोग क़ुदरत रखने के बाद भी हज को टालते रहते हैं और हज़ारों काम के बहाने कर-करके साल पर साल यूँ ही गुज़ारते चले जाते हैं उनको अपने ईमान की ख़ैर मनानी चाहिए। रहे वे लोग जिनको उम्र भर कभी यह ख़याल ही नहीं आता कि हज भी कोई फ़र्ज़ उनके ज़िम्मे है, दुनिया भर के सफ़र करते फिरते हैं, 'यूरोपीय काबा' को आते-जाते हिजाज़ के साहिल से भी गुज़र जाते हैं, जहाँ से मक्का सिर्फ़ कुछ घण्टों की दूरी पर है और फिर भी हज का इरादा तक उनके दिल में नहीं गुज़रता, वे तो बिलकुल ही मुसलमान नहीं हैं। झूठ कहते हैं अगर अपने-आप को मुसलमान कहते हैं और जो उन्हें मुसलमान समझता है वह दरअसल क़ुरआन की तालीमात से नावाक़िफ़ और जाहिल है। अल्लाह के हुक्म से मुँह मोड़नेवालों के दिल में अगर मुसलमानों के मुताल्लिक़ दर्द उठता है तो उठा करे, लेकिन सब बेमाना है जब तक अल्लाह की इताअत और उसके हुक्म पर ईमान का जज़्बा उनके दिल में नहीं है।

हज के फ़ायदे

मुसलमान भाइयो! क़ुरआन मजीद में जहाँ यह ज़िक्र आया है कि अल्लाह तआला ने इबराहीम (अलै०) को हज की आम मुनादी करने का हुक्म दिया था, वहाँ उस हुक्म की पहली वजह यह बयान की गई है कि, "लियशहदू मनाफ़ि-अ लहुम" (ताकि लोग यहाँ आकर देखें कि हज में उनके लिए कैसे-कैसे फ़ायदे हैं।) यानी यह सफ़र करके और उस जगह जमा होकर वे ख़ुद अपनी आँखों से देख लें कि यह उन्हीं के फ़ायदे के लिए है और उसमें जो फ़ायदे छिपे हुए हैं, उनका अन्दाज़ा कुछ उसी वक़्त हो सकता है जबकि आदमी यह काम करके ख़ुद देख ले। हज़रत इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) के बारे में कहा जाता है कि जब तक उन्होंने हज नहीं किया था, उन्हें इस मामले में खटका था कि इस्लामी इबादतों में सबसे अफ़ज़ल कौन-सी इबादत है। मगर जब उन्होंने ख़ुद हज करके उन अनगिनत फ़ायदों को देखा जो इस इबादत में छिपे हुए हैं, तो बेधड़क पुकार उठे कि यक़ीनी तौर पर हज सबसे अफ़ज़ल है।

आइए! अब मैं आपको चंद लफ़्ज़ों में इसके फ़ायदे बताऊँ:

हज के सफ़र की नौईयत

दुनिया के लोग आम तौर पर दो ही क़िस्मों के सफ़रों को जानते हैं। एक सफ़र वह जो रोटी कमाने के लिए किया जाता है, दूसरा वह जो सैर व मनोरंजन के लिए किया जाता है। इन दोनों सफ़रों में अपनी ग़रज़ और अपनी ख़्वाहिश आदमी को बाहर निकलने को तैयार करती है। घर छोड़ता है तो अपने मतलब के लिए, बाल-बच्चों और नातेदारों से अलग होता है तो अपनी ख़ातिर, माल ख़र्च करता है या वक़्त लगाता है तो अपनी ग़रज़ के लिए, इसमें क़ुरबानी का कोई सवाल नहीं है। मगर यह सफ़र जिसका नाम हज है, इसका मामला और सब सफ़रों से अलग है। यह सफ़र अपनी ग़रज़ के लिए या अपने नफ़्स की किसी ख़्वाहिश के लिए नहीं है, बल्कि सिर्फ़ अल्लाह के लिए और उस फ़र्ज़ को अदा करने के

लिए है जो अल्लाह ने मुक़र्रर किया है। इस सफ़र पर कोई शख़्स उस वक़्त तक तैयार हो ही नहीं सकता, जब तक कि उसके दिल में अल्लाह की मुहब्बत न हो, उसका डर न हो और उसके फ़र्ज़ को फ़र्ज़ समझने का ख़याल न हो। तो जो शख़्स अपने घर बार से एक लम्बी मुद्दत के लिए अलगाव, अपने सगे-सम्बन्धियों से जुदाई, अपने कारोबार का नुक़सान, अपने माल का ख़र्च और सफ़र की तकलीफ़ें बरदाश्त करके हज को निकलता है, उसका निकलना ख़ुद इस बात की दलील है कि उसके अन्दर ख़ुदा का ख़ौफ़ और ख़ुदा की मुहब्बत भी है और फ़र्ज़ का एहसास भी है, और उसमें यह ताक़त भी मौजूद है कि अगर किसी वक़्त ख़ुदा की राह में निकलने की ज़रूरत पेश आए तो वह निकल सकता है, तकलीफ़ें उठा सकता है, अपने माल और अपनी राहत को ख़ुदा की ख़ुशी पर कुरबान कर सकता है।

नेकी और तक़वा की चाह

फिर जब वह ऐसे पाक इरादे से सफ़र के लिए तैयार होता है तो उसकी तबीयत का हाल कुछ और ही होता है। जिस दिल में ख़ुदा की मुहब्बत का शौक़ भड़क उठा हो और जिसको उधर की लौ लग गई हो, उसमें फिर नेक ही नेक ख़याल आने शुरू हो जाते हैं। गुनाहों से तौबा करता है और लोगों से अपना कहा-सुना माफ़ करवाता है। किसी का हक़ उसपर आता हो तो उसे अदा करने की फ़िक्र करता है, ताकि ख़ुदा के दरबार में बन्दों के हक़ का बोझ लादे हुए न जाए। बुराई से उसके दिल को नफ़रत होने लगती है और कुदरती तौर पर भलाई की तरफ़ रग़बत बढ़ जाती है। फिर सफ़र के लिए निकलने के साथ ही जैसे-जैसे वह ख़ुदा के घर की तरफ़ बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसके अन्दर नेकी का जज़्बा भी बढ़ता चला जाता है। उसकी कोशिश यह होती है कि किसी को उससे तकलीफ़ न पहुँचे और जिसकी जितनी ख़िदमत या मदद हो सके, करे। बदकलामी, बेहूदगी, बेहयाई, बद्दयानती और झगड़ा-फ़साद करने से ख़ुद उसकी अपनी तबीयत अन्दर से रुकती है; क्योंकि वह ख़ुदा के रास्ते में जा रहा है। अल्लाह के घर का मुसाफ़िर हो और फिर बुरे काम करता हुआ जाए, ऐसी शर्म की बात किसी से कैसे हो? उसका तो यह सफ़र पूरा का पूरा इबादत

है। इस इबादत की हालत में ज़ुल्म और फ़िस्क़ का क्या काम? इसलिए दूसरे तमाम सफ़रों के ख़िलाफ़ यह ऐसा सफ़र है जो हर वक़्त आदमी के नफ़्स को पाक करता रहता है। और यूँ समझो कि यह एक बहुत बड़ा सुधार करनेवाला कोर्स है जिससे लाज़मी तौर पर हर उस मुसलमान को गुज़रना पड़ता है जो हज के लिए जाए।

इहराम और उसकी शर्तें

सफ़र का एक हिस्सा तय कर चुकने के बाद एक ख़ास हद ऐसी आती है जिससे कोई मुसलमान जो मक्का जाना चाहता हो, इहराम बाँधे बिना आगे नहीं बढ़ सकता। यह इहराम क्या है? एक फ़क़ीराना लिबास जिसमें एक तहबन्द, एक चादर और जूती (चप्पल) के सिवा कुछ नहीं होता। इसका मतलब यह है कि अब तक जो कुछ तुम थे, सो थे, मगर अब जो तुम्हें ख़ुदा के दरबार में जाना है तो फ़क़ीर बनकर चलो। ज़ाहिर में भी फ़क़ीर बनो और दिल के भी फ़क़ीर बनने की कोशिश करो। रंगीन कपड़े और साज-सज्जा के लिबास उतार दो। सादा और दुर्वेशाना ढंग के लिबास पहन लो। मोज़े न पहनो, सिर खुला रखो, ख़ुशबू न लगाओ, बाल न बनाओ, हर क़िस्म की सजावट से परहेज़ करो। शौहर-बीवी का ताल्लुक़ बन्द कर दो, बल्कि ऐसी हरकतों और बातों से भी परहेज़ करो जो इस चाह को बढ़ानेवाली या इसकी याद दिलानेवाली हों। शिकार न करो, बल्कि शिकारी को शिकार का निशाना देने या उसका पता बताने से भी पहलू बचाओ। ज़ाहिर में जब यह रंग अपनाओगे तो बातिन पर भी इसका असर पड़ेगा। अन्दर से तुम्हारा दिल भी फ़क़ीर बनेगा, किब्र व ग़ुरूर निकलेगा, मिसकीनी और अम्न-पसंदी पैदा होगी। दुनिया और उसकी लज़्ज़तों में फँसने से जो कुछ गन्दगियाँ तुम्हारी रूह को लग गई थीं, वे साफ़ होंगी और ख़ुदापरस्ती की कैफ़ियत तुम्हारे ऊपर भी छाती जाएगी और अन्दर भी।

तलबिया

इहराम बाँधने के साथ जो कलिमें हाजी की ज़बान से निकलते हैं, जिनको वह हर नमाज़ के बाद और हर ऊँचाई पर चढ़ते वक़्त, और हर निचाई

की तरफ़ उतरते वक़्त, और हर क़ाफ़िले से मिलते वक़्त और हर रोज़ सुबह जागकर ऊँची आवाज़ से पुकारता है, वे ये हैं—

لَبَّيْكَ اَللّٰهُمَّ لَبَّيْكَ لَبَّيْكَ لاَشَرِيْكَ لَكَ لَبَّيْكَ إِنَّ الْحَمْدَ وَالنِّعْمَةَ لَكَ وَالْمُلْكَ لاَشَرِيْكَ لَكَ.

लब्बैक, अल्लाहुम-म लब्बैक, लब्बैक ला शरी-क ल-क, लब्बैक, इन्नल हम-द वन्नेअ-म-त ल-क वल मुल्-क, ला शरी-क ल-क।

हाज़िर हूँ मेरे अल्लाह! मैं हाज़िर हूँ, हाज़िर हूँ, तेरा कोई शरीक नहीं, मैं हाज़िर हूँ। बेशक तारीफ़ सब तेरे ही लिए है। नेमत सब तेरी ही है। सारी बादशाही तेरी है, तेरा कोई शरीक नहीं।

यह दरअसल हज की उस आम आवाज़ का जवाब है जो साढ़े चार हज़ार साल से पहले हज़रत इबराहीम (अलै०) ने अल्लाह के हुक्म से बुलन्द की थी। पैंतालीस सदियाँ गुज़र चुकी हैं जब पहले-पहल अल्लाह के उस मुनादी ने पुकारा था—

"अल्लाह के बन्दो! अल्लाह के घर की तरफ़ आओ, ज़मीन के कोने-कोने से आओ, चाहे पैदल चलकर आओ, चाहे सवारियों पर आओ।"

जवाब में आज तक हरम[1] का हर मुसाफ़िर ऊँची आवाज़ से कह रहा है—

"मैं हाज़िर हूँ, मेरे अल्लाह मैं हाज़िर हूँ। तेरा कोई शरीक नहीं, मैं सिर्फ़ तेरे बुलावे पर हाज़िर हूँ। तारीफ़ तेरे लिए है, नेमत तेरी है, मुल्क तेरा है, किसी चीज़ में तेरा कोई शरीक नहीं।"

इस तरह 'लब्बैक' की हर आवाज़ के साथ हाजी का ताल्लुक़ सच्ची और ख़ालिस ख़ुदापरस्ती की उस तहरीक से जुड़ जाता है जो हज़रत इबराहीम व इसमाईल (अलै०) के वक़्त से चली आ रही है। साढ़े चार हज़ार साल का फ़ासला बीच में से हट जाता है। ऐसा मालूम होने लगता है कि मानो

1. ख़ाना-काबा

उधर अल्लाह की तरफ़ से हज़रत इबराहीम (अलै०) पुकार रहे हैं और इधर से यह जवाब दे रहा है। जवाब देता जाता है और बढ़ता जाता है। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता है, शौक़ की कैफ़ियत और ज़्यादा तेज़ होती जाती है। हर चढ़ाव और हर उतार पर उसके कानों में अल्लाह के मुनादी की आवाज़ गूँजती है और यह उसपर लब्बैक कहता हुआ आगे चलता है। हर क़ाफ़िला उसे वहीं का पैग़ाम देनेवाला मालूम होता है और एक आशिक़ की तरह यह उसका पैग़ाम सुनकर पुकारता है: "मैं हाज़िर, मैं हाज़िर!" हर नई सुबह उसके लिए मानो 'दोस्त का पैग़ाम' लाती है और नूर के तड़के में आँख खोलते ही यह "लब्बैक अल्लाहुम्-म लब्बैक" की सदा लगाने लगता है। ग़रज़ यह बार-बार की सदा इहराम के उस फ़क़ीराना लिबास, सफ़र की उस हालत और मंज़िल ब मंज़िल करके काबा से ज़्यादा क़रीब होते जाने की उस कैफ़ियत के साथ मिलकर कुछ ऐसा समाँ बाँध देती है कि हाजी ख़ुदा के इश्क़ में बेक़रार हो जाता है और उसके दिल की यह हालत होती है कि बस दोस्त की एक याद के सिवा "आग इस घर में लगी ऐसी कि जो था जल गया।"

तवाफ़े ज़ियारत

इस शान से हाजी मक्का पहुँचता है और जाते ही सीधा उस आस्ताने की तरफ़ मुड़ जाता है जिसकी तरफ़ बुलाया गया था। दोस्त के आस्ताने को चूमता है, फिर अपने अक़ीदे, अपने ईमान और अपने दीन व मज़हब के उस मरकज़ के गिर्द चक्कर लगाता है और हर चक्कर आस्ताना चूमने से शुरू और आस्ताना चूमने ही पर ख़त्म करता जाता है।[1] इसके बाद मक़ामे इबराहीम पर दो रकअतें सलामी की पढ़ता है। फिर वहाँ से निकलकर

---

1. हजरे असवद (काला पत्थर) के बोसा लेने पर नादान लोग अकसर एतराज़ करते हैं। वे कहते हैं कि यह भी तो एक तरह की बुतपरस्ती है, हालाँकि दरअसल यह आस्ताना बोसी के सिवा कुछ नहीं है। काबा का तवाफ़ हजरे असवद के सामने से शुरू किया जाता है और सात तवाफ़ के बीच में हर तवाफ़ के ख़ात्मे पर हजरे असवद को बोसा दिया जाता है या उसकी तरफ़ इशारा कर दिया जाता है। इसमें ज़र्रा बराबर भी अंश उस हजरे असवद की पूजा का नहीं पाया जाता। हज़रत उमर (रज़ि०) का यह क़ौल मशहूर है कि उन्होंने हजरे असवद को ख़िताब करके फ़रमाया था कि "मैं जानता हूँ कि तू सिर्फ़ एक पत्थर है। अगर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने तुझे न चूमा होता, तो मैं हरगिज़ तुझे न चूमता।"

सफ़ा पहाड़ पर चढ़ता है और वहाँ से जब काबा पर नज़र पड़ती है तो पुकार उठता है!

لَآ اِلٰـهَ اِلاَّ اللّٰهُ وَلاَ نَعْبُدُ اِلاَّ اِيَّاهُ مُخْلِصِيْنَ لَهُ الدِّيْنَ وَلَوْ كَرِهَ الْكٰفِرُوْنَ.

कोई माबूद नहीं अल्लाह के सिवा, किसी दूसरे की हम बंदगी नहीं करते, हमारी इताअत सिर्फ़ अल्लाह ही के लिए ख़ास है, चाहे कुफ्र करनेवालों को कितना ही नापसंद हो।

सफ़ा व मर्वा के बीच दौड़

फिर वह सफ़ा व मर्वा के बीच दौड़ता है, गोया अपनी हालत से इस बात का सबूत दे रहा है कि यूँ ही अपने मालिक की ख़िदमत में और यूँ ही उसकी ख़ुशनूदी की तलब में हमेशा सई करता रहेगा। इस सई के बीच में कभी उसकी ज़बान से निकलता है—

اَللّٰهُمَّ اسْتَعْمِلْنِىْ بِسُنَّـةِ نَبِيِّكَ وَتَـوَفَّنِـىْ عَلٰى مِلَّـتِـهٖ وَاَعِـذْنِـىْ مِـنْ مُّضِلاَّتِ الْفِتَنِ.

ख़ुदाया! मुझसे काम ले उसी तरीक़े पर जो तेरे नबी का तरीक़ा है, और मुझे मौत दे उसी रास्ते पर जो तेरे नबी का रास्ता है और ज़िन्दगी में मुझे बचा उन फ़ितनों से जो सीधे रास्ते से भटकानेवाले हैं।

और कभी कहता है—

رَبِّ اغْفِرْ وَارْحَمْ وَتَجَاوَزْ عَمَّا تَعْلَمْ اِنَّكَ اَنْتَ الْاَعَزُّ وَالْاَكْرَمُ○

परवरदिगार! माफ़ कर और रहम कर, मेरे जिन क़सूरों को तू जानता है, उनसे दरगुज़र कर! तेरी ताक़त सबसे बढ़कर है और तेरा करम भी सबसे बढ़कर है।

वुक़ूफ़े मिना, अरफ़ात और मुज़दल्फ़ा

इसके बाद वह मानो अल्लाह का सिपाही बन जाता है और अब पाँच-छः

रोज़ उसको कैम्प की-सी ज़िन्दगी बसर करनी होती है। एक दिन मिना में पड़ाव है, दूसरे दिन अरफ़ात में कैम्प है और ख़ुतबे में कमाण्डर की हिदायतें सुनी जा रही हैं। रात मुज़दल्फ़ा में जाकर छावनी डाली जाती है।

रमी जिमार

दिन निकलता है तो मिना की तरफ़ कूच होता है और वहाँ उस सुतून पर कंकरियों से चाँदमारी की जाती है, जहाँ तक असहाबे फ़ील (हाथीवालों की फ़ौजें) काबा को ढहाने के लिए पहुँच गई थीं। हर कंकरी मारने के साथ अल्लाह का सिपाही कहता जाता है:

اَللّٰهُ اَكْبَرُ رَغْمًا لِّلشَّيْطٰنِ وَ حِزْبِهٖ.

अल्लाहु अकबर रग़मल्लिशैतानि व हिज़्बिही, और

اَللّٰهُمَّ تَصْدِيْقًا بِكِتٰبِكَ وَاتِّبَاعًا لِّسُنَّةِ نَبِيِّكَ.

अल्लाहुम-म तस्दीक़म बिकिताबि-क व इत्तिबाअ़ल लि सुन्नति नबिय्यिक।

कंकरियों की इस चाँदमारी का मतलब यह है कि ख़ुदाया जो तेरे दीन को मिटाने और तेरा बोल नीचा करने उठेगा, मैं उसके मुक़ाबले में तेरा बोल-बोला करने के लिए यूँ लड़ूँगा। फिर उसी जगह क़ुरबानी की जाती है, ताकि ख़ुदा की राह में ख़ून बहाने की नीयत और इरादे का इज़हार अमल से हो जाए। फिर सिर मुंडवाया जाता है या बाल कटवाए जाते हैं, फिर वहाँ से काबे का रुख़ किया जाता है, जैसे सिपाही अपनी ड्यूटी पूरी करके हेडक्वार्टर की तरफ़ कामयाब वापस आ रहा है। अब इहराम खुल जाता है। जो कुछ हराम किया गया था वह अब फिर हलाल हो जाता है और अब हाजी की ज़िन्दगी फिर मामूली तौर पर शुरू हो जाती है। इस मामूली ज़िन्दगी की तरफ़ पलटने के बाद हाजी मिना में जाकर फिर कैम्प करता है और दूसरे दिन पत्थर के उन तीनों सुतूनों पर बारी-बारी कंकरियों से फिर चाँदमारी करता है, जिनको जमरात कहते हैं और जो दरअसल उस हाथीवाली फ़ौज की पसपाई और तबाही की यादगार हैं, जो अल्लाह

के रसूल (सल्ल०) की पैदाइश के साल ठीक हज के मौक़े पर अल्लाह के इस घर को ढहाने आई थी और जिसे अल्लाह के हुक्म से आसमानी चिड़ियों ने कंकरियाँ मार-मारकर तबाह कर दिया था।[1] तीसरे दिन फिर इन सुतूनों पर पत्थर बरसाने के बाद हाजी मक्का पलटता है और सात बार अपने दीन के मरकज़ का तवाफ़ करता है। यह विदाई होने का तवाफ़ है, इससे फ़ारिग़ होने के माने हज से फ़ारिग़ हो जाने के हैं।

हज की बरकतें व असरात

यह सारी तफ़सील जो आपने सुनी, इससे आप अन्दाज़ा कर सकते हैं कि हज के इरादे और उसकी तैयारी से लेकर अपने घर वापस आने तक, दो-तीन महीने की मुद्दत में, कितने ज़बरदस्त असरात आदमी के दिल और दिमाग़ पर पड़ते हैं। इसमें वक़्त की क़ुरबानी है, माल की क़ुरबानी है, आराम व आसाइश की क़ुरबानी है, बहुत-से दुनियवी ताल्लुक़ात की क़ुरबानी है, बहुत-सी नफ़्सानी ख़्वाहिशों और लज़्ज़तों की क़ुरबानी है और यह सब कुछ अल्लाह की ख़ातिर है, कोई अपनी ग़रज़ इसमें शामिल नहीं। फिर इस सफ़र में परहेज़गारी व तक़वा के साथ लगातार ख़ुदा की याद और ख़ुदा की तरफ़ शौक़ व इश्क़ की जो कैफ़ियत आदमी पर गुज़रती है, वह अपना एक मुस्तक़िल नक़्श दिल पर छोड़ जाती है, जिसका असर सालों क़ायम रहता है। फिर हरम की सरज़मीन में पहुँचकर क़दम-क़दम पर इनसान उन लोगों की निशानियों को देखता है जिन्होंने अल्लाह की बन्दगी व इताअत में अपना सब कुछ क़ुरबान किया, दुनियाभर से लड़े, मुसीबतें उठाईं, मुल्क से निकाले गए, ज़ुल्म पर ज़ुल्म सहे, मगर आख़िरकार अल्लाह का कलिमा बुलन्द करके छोड़ा और हर उस झूठी ताक़त का सिर नीचा करके ही दम लिया जो आदमी से अल्लाह के सिवा किसी और की बन्दगी कराना चाहती थी। इन ज़ाहिर और बरकतवाली निशानियों

---

1. आम तौर पर यह मशहूर है कि कंकरियाँ मारने का यह काम उस घटना की यादगार है जो हज़रत इबराहीम (अलै०) को पेश आई थी, यानी हज़रत इसमाईल (अलै०) की क़ुरबानी देते वक़्त शैतान ने आकर आपको बहकाया था और आपने उसे कंकरियाँ मारी थीं, या जब हज़रत इसमाईल (अलै०) के फ़िदया में मेंढ़ा आपको क़ुरबानी के लिए दिया गया तो वह निकलकर भागा था और उसको आपने कंकरियाँ मारी थीं। लेकिन किसी सही हदीस में नबी (सल्ल०) से यह रिवायत नहीं है कि रमिए जिमार (पत्थर मारने) की वजह यह है।

को देखकर एक ख़ुदापरस्त आदमी हिम्मत व इरादा और अल्लाह की राह में जिहाद का जो सबक़ ले सकता है, शायद किसी दूसरी चीज़ से नहीं ले सकता। फिर काबा के तवाफ़ से उस दीन के मरकज़ से जो वाबिस्तगी होती है और मनासिके हज के बीच दौड़-धूप, कूच और क़याम से मुजाहिदाना ज़िन्दगी की जो मश्क़ कराई जाती है, उसे अगर आप नमाज़ और रोज़ा और ज़कात के साथ मिलाकर देखें तो आपको मालूम होगा कि ये सारी चीज़ें किसी बहुत बड़े काम की ट्रेनिंग हैं जो इस्लाम मुसलमानों से लेना चाहता है। इसी लिए हर उस मुसलमान पर जो काबा तक जाने-आने की क़ुदरत रखता हो, हज ज़रूरी कर दिया गया है, ताकि जहाँ तक मुमकिन हो, हर ज़माने में ज़्यादा-से-ज़्यादा मुसलमान ऐसे मौजूद रहें जो इस पूरी ट्रेनिंग से गुज़र चुके हों।

हज एक इजतिमाई इबादत

लेकिन हज के फ़ायदों का पूरा अन्दाज़ा आप उस वक़्त तक नहीं कर सकते, जब तक यह बात आपके सामने न हो कि एक-एक मुसलमान अकेला-अकेला हज नहीं करता, बल्कि तमाम दुनिया के मुसलमानों के लिए हज का एक ही ज़माना रखा गया है और हज़ारों-लाखों मुसलमान मिलकर एक वक़्त में हज अदा करते हैं। पहले जो कुछ मैंने बयान किया है उससे तो आपके सामने सिर्फ़ इतनी बात आई है कि अलग-अलग, एक-एक हाजी पर इस इबादत का क्या असर होता है। अब मैं अगले ख़ुतबे में आपको यह बताऊँगा कि सारी दुनिया के मुसलमानों के लिए हज का एक ही वक़्त मुक़र्रर करके इन फ़ायदों को किस तरह लाखों दरजे बढ़ा दिया गया है। इस्लाम का कमाल यही है कि एक पंथ दो काज नहीं, बल्कि हज़ार काज निकाल ले जाता है। नमाज़ अलग पढ़ने में ही कुछ कम फ़ायदे न थे, मगर उसके साथ जमाअत की शर्त लगाकर, और इमामत का क़ायदा मुक़र्रर करके और जुमा व दोनों ईदों की बड़ी जमाअतें बनाकर उसके फ़ायदों को बेहदो हिसाब बढ़ा दिया गया है। रोज़ा अलग-अलग रखना भी इसलाह व तरबियत का बहुत बड़ा ज़रिया था, लेकिन सब मुसलमानों के लिए रमज़ान का एक ही महीना मुक़र्रर करके उसके फ़ायदे इतने बढ़ा दिए गए कि गिना नहीं जा सकता। ज़कात अलग-अलग देने में भी बहुत

ख़ूबियाँ थीं, मगर उसके लिए बैतुलमाल का निज़ाम मुक़र्रर करके उसके फ़ायदों को इतना ज़्यादा बढ़ा दिया गया कि आप उसका अन्दाज़ा उस वक़्त तक कर ही नहीं सकते, जब तक कि इस्लामी हुकूमत क़ायम न हो, और आप अपनी आँखों से देख न लें कि तमाम मुसलमानों की ज़कात एक जगह जमा करके एक इंतिज़ाम के साथ उसके हक़दारों में तक़सीम करने से कितनी ख़ैर व बरकत होती है। यही मामला हज का भी है। अकेला-अकेला आदमी हज करे तब भी उसकी ज़िन्दगी में बहुत बड़ा इंक़िलाब हो सकता है, मगर तमाम दुनिया के मुसलमानों के लिए एक ही वक़्त में मिलकर हज करने का क़ायदा मुक़र्रर करके तो उसके फ़ायदों की कोई हद बाक़ी ही नहीं रखी गई। यह मज़मून ज़रा तफ़सील (विस्तार) चाहता है इसलिए, अगर अल्लाह ने चाहा, तो अगले ख़ुतबे में इसको तफ़सील के साथ बयान करूँगा।

हज का आलमगीर इजतिमा

हज के फ़ायदे

इस्लामी दुनिया में हरकत

मुसलमान भाइयो! आप जानते हैं कि ऐसे मुसलमान जिनपर हज फ़र्ज़ है, यानी जो काबा तक आने-जाने की क़ुदरत रखते हैं, एक-दो तो होते नहीं हैं। हर बस्ती में उनकी अच्छी ख़ासी तादाद होती है। हर शहर में हज़ारों और हर मुल्क में लाखों ही होते हैं और हर साल उनमें से बहुत-से लोग हज का इरादा करके निकलते हैं। अब ज़रा सोचिए कि दुनिया के कोने-कोने में जहाँ-जहाँ भी मुसलमान बसते हैं, हज का मौसम आने के साथ ही किस तरह इस्लाम की ज़िन्दगी जाग उठती है, कैसी कुछ हरकत पैदा होती है और कितनी देर तक रहती है। तक़रीबन रमज़ान के महीने से लेकर ज़ीक़ादा तक दुनिया के सभी हिस्सों से अनेकों लोग हज्ज की तैयारियाँ करके निकलते हैं और उधर ज़िलहिज्जा के आख़िर से सफ़र, रबीउल अव्वल, बल्कि रबीउस्सानी तक वापस होनेवालों का सिलसिला चलता रहता है। इस 6-7 महीने की मुद्दत तक मानो लगातार इस ज़मीन की तमाम मुसलमान आबादियों में एक तरह की दीनी हरकत जारी रहती है। जो लोग हज को जाते और हज से वापस आते हैं वे तो दीनी कैफ़ियत से सरशार होते ही हैं मगर जो नहीं जाते, उनको भी हाजियों को विदा करने और एक-एक बस्ती से उनके गुज़रने और फिर वापसी में उनका स्वागत करने और उनसे हज के हालात सुनने की वजह से थोड़ा या बहुत इस कैफ़ियत का कुछ न कुछ हिस्सा मिल ही जाता है।

परहेज़गारी और तक़वा में बढ़ोतरी

जब एक-एक हाजी हज की नीयत करता है और उस नीयत के साथ ही उस पर ख़ुदा का ख़ौफ़ और परहेज़गारी और तौबा व इसतिग़फ़ार और नेक अख़लाक़ों के असरात छाने शुरू होते हैं, और वह अपने अज़ीज़ों,

दोस्तों, मामलादारों और हर क़िस्म के ताल्लुक़ रखनेवालों से इस तरह रुख़्सत होता है और अपने मामले साफ़ करना शुरू करता है कि मानो अब वह पहले जैसा आदमी नहीं है, बल्कि ख़ुदा की तरफ़ लौ लग जाने की वजह से उसका दिल पाक-साफ़ हो रहा है, तो अन्दाज़ा कीजिए कि एक हाजी की इस हालत का कितने-कितने लोगों पर असर पड़ता होगा और अगर हर साल दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में एक लाख आदमी भी औसतन इस तरह हज के लिए तैयार होते हों तो उनकी तासीर कितने लाख आदमियों के अख़लाक़ तक पहुँचती होगी? फिर हाजियों के क़ाफ़िले जहाँ-जहाँ से गुज़रते होंगे, वहाँ उनको देखकर, उनसे मिलकर, उनकी 'लब्बैक-लब्बैक' की आवाज़ें सुनकर कितनों के दिल गरमा जाते होंगे, कितनों की तवज्जोह अल्लाह की तरफ़ और अल्लाह के घर की तरफ़ फिर जाती होगी और कितनों की सोई हुई रूह में हज के शौक़ से हरकत पैदा हो जाती होगी। फिर जब ये लोग अपने मरकज़ से फिरकर अपनी-अपनी बसतियों की तरफ़ दुनिया के मुख़्तलिफ़ हिस्सों में हज की कैफ़ियतों का ख़ुमार लिए हुए पलटते होंगे और लोग उनसे मुलाक़ात करते होंगे तो उनके हाल व क़ाल ज़बान से अल्लाह के घर का ज़िक्र सुनकर कितने बेशुमार हलक़ों में दीनी जज़्बात ताज़ा हो जाते होंगे।

इस्लामी दुनिया की बेदारी का मौसम

इसलिए अगर मैं यह कहूँ तो बेजा न होगा कि जिस तरह रमज़ान का महीना तमाम इस्लामी दुनिया में तक़वा का मौसम है, उसी तरह हज का ज़माना तमाम दुनिया में इस्लाम की ज़िन्दगी और बेदारी का ज़माना है। इस तरीक़े से शरीअत बनानेवाले हकीम व दाना ने ऐसा बेमिसाल इंतिज़ाम कर दिया है कि अगर अल्लाह ने चाहा तो क़ियामत तक इस्लाम की यह आलमगीर तहरीक मिट नहीं सकती। दुनिया के हालात चाहे कितने ही बिगड़ जाएँ और ज़माना कितना ही ख़राब हो जाए, मगर यह काबे का मरकज़ इस्लामी दुनिया के जिस्म में कुछ इस तरह रख दिया गया है, जैसे आदमी के जिस्म में दिल होता है। जब तक दिल हरकत करता रहे, आदमी मर नहीं सकता, चाहे बीमारियों की वजह से हिलने तक की ताक़त न रखता हो। बिलकुल इसी तरह दुनिया का यह दिल भी हर साल उसकी

दूर-दूर की रगों तक से ख़ून खींचता रहता है और फिर उसको रग-रग तक फैला देता है। जब तक इस दिल की यह हरकत जारी है और जब तक ख़ून के खींचने और फैलने का यह सिलसिला चल रहा है उस वक़्त तक यह बिलकुल नामुमकिन है कि इस जिस्म की ज़िन्दगी ख़त्म हो जाए, भले ही बीमारियों से यह कितना ही कमज़ोर हो गया हो।

मिल्लत की एकता का शानदार नज़ारा

ज़रा आँखें बँद करके अपने दिल में उस नक़्शे का तसव्वुर तो कीजिए कि इधर पूरब से, उधर पश्चिम से, इधर उत्तर से, उधर दक्षिण से अनगिनत क़ौमों और मुल्कों के लोग हज़ारों रास्तों से एक ही मरकज़ की तरफ़ चले आ रहे हैं। शक्लें और सूरतें अलग-अलग हैं, रंग अलग, ज़बानें अलग, लिबास अलग मगर मरकज़ के क़रीब एक ख़ास हद तक पहुँचते ही सब अपने-अपने क़ौमी लिबास उतार देते हैं और सारे के सारे एक ही तरह का सादा यूनीफ़ार्म पहन लेते हैं। इहराम का यह यूनीफ़ार्म पहनने के बाद एलानिया यह मालूम होने लगता है कि दुनिया और ज़मीन व आसमान के बादशाह की यह फ़ौज, जो दुनिया की हज़ारों क़ौमों से भर्ती होकर आ रही है, एक ही बादशाह की फ़ौज है, एक ही इताअत व बन्दगी का निशान उन सबपर लगा हुआ है, एक ही वफ़ादारी के रिश्ते में ये सब बँधे हुए हैं और एक ही राजधानी की तरफ़ अपने बादशाह के सामने पेश होने के लिए जा रहे हैं। ये यूनीफ़ार्म पहने हुए सिपाही जब मीक़ात[1] से आगे बढ़ते हैं तो उन सबकी ज़बानों से वही एक नारा बुलंद होता है—

لَبَّيْكَ، اَللّٰهُمَّ لَبَّيْكَ لاَ شَرِيْكَ لَكَ لَبَّيْكَ.

लब्बैक, अल्लाहुम-म लब्बैक ला शरी-क ल-क लब्बैक।

बोलने की ज़बानें सबकी मुख़्तलिफ़ हैं, मगर नारा सबका एक ही है। फिर ज्यों-ज्यों मरकज़ क़रीब आता जाता है, दायरा सिमटकर छोटा होता चला जाता है। मुख़्तलिफ़ मुल्कों के क़ाफ़िले मिलते चले जाते हैं और सबके सब मिलकर नमाज़ें एक ही ढंग पर पढ़ते हैं। सबका एक यूनीफ़ार्म,

---

1. वह जगह जहाँ से हज की नीयत से मक्का जानेवाले हज का इहराम बाँधते हैं।

सबका एक इमाम, सबकी एक ही हरकत, सबकी एक ही ज़बान, सब एक 'अल्लाहु अकबर' के ही इशारे पर उठते और बैठते हैं और रुकू और सिजदा करते हैं और सब उसी एक अरबी क़ुरआन को पढ़ते और सुनते हैं। यूँ ज़बानों और क़ौमियतों और वतनों और नस्लों का फ़र्क़ ख़त्म होता है और इस तरह ख़ुदापरस्तों की एक आलमगीर जमाअत बनती है, फिर जब ये क़ाफ़िले एक ज़बान होकर 'लब्बैक-लब्बैक' के नारे बुलन्द करते हुए चलते हैं, जब हर बुलंदी और हर पस्ती पर यही नारे लगते हैं, जब क़ाफ़िलों के एक-दूसरे से मिलने के वक़्त दोनों तरफ़ से यही आवाज़ें उठती हैं, जब नमाज़ों के वक़्त और सुबह के तड़के में यही आवाज़ें गूँजती हैं तो एक अजीब माहौल पैदा हो जाता है जिसके नशे में आदमी चूर होकर अपनी ख़ुदी को भूल जाता है और इस लब्बैक की कैफ़ियत में डूबकर रह जाता है। फिर काबा पहुँचकर तमाम दुनिया से आए हुए आदमियों का एक लिबास में एक मरकज़ के चारों तरफ़ घूमना, फिर सबका एक साथ सफ़ा और मरवा के बीच सई करना, फिर सबका मिना में कैम्प लगाना, फिर सबका अरफ़ात की तरफ़ कूच करना और वहाँ एक इमाम से ख़ुतबा सुनना, फिर सबका मुज़दल्फ़ा में रात को छावनी डालना, फिर सबका एक साथ मिना की तरफ़ पलटना, फिर सबका मिलकर जमरए उक़्बा पर कंकरियों की चाँदमारी करना, फिर सबका क़ुरबानियाँ करना, फिर सबका एक साथ काबे की तरफ़ पलटकर तवाफ़ करना, फिर सबका एक ही मरकज़ के गिर्द नमाज़ पढ़ना— यह अपने अन्दर वह कैफ़ियत रखता है जिसकी मिसाल दुनिया में मिलनी मुशकिल है।

एक मक़सद, एक मरकज़ पर इजतिमा

दुनियाभर की क़ौमों से निकले हुए लोगों का एक मरकज़ पर जमा होना और वह भी ऐसी यकदिली व यकजहती के साथ, ऐसी हमख़याली व हमआहंगी के साथ, ऐसे पाक जज़्बों, पाक मक़सदों और पाक कामों के साथ, हक़ीक़त में इतनी बड़ी नेमत है जो आदम की औलाद को इस्लाम के सिवा किसी ने नहीं दी। दुनिया की क़ौमें हमेशा एक-दूसरे से मिलती रही हैं, मगर किस तरह? जंग के मैदान में गला काटने के लिए या सुलह कांफ्रेन्सों में मुल्कों की तक़सीम और कौमों के बँटवारे के लिए या यू०एन०ओ०

की मजलिस में ताकि हर क़ौम एक-दूसरी क़ौम के ख़िलाफ़ धोखे, फ़रेब, साज़िश और बेईमानियों के जाल फैलाए और दूसरों के नुक़सान से अपना फ़ायदा करने की कोशिश करे। तमाम क़ौमों के आम लोगों का साफ़दिली के साथ मिलना, नेक अख़लाक़ और पाक ख़यालात के साथ मिलना, मुहब्बत और ख़ुलूस के साथ मिलना, दिली व रूहानी मिलाप के साथ मिलना, ख़यालात, आमाल और मक़ासिद की यकजेहती के साथ मिलना और सिर्फ़ एक ही बार मिलकर न रह जाना, बल्कि हमेशा-हमेशा के लिए हर साल एक मरकज़ पर इसी तरह इकट्ठे होते रहना, क्या यह नेमत इस्लाम के सिवा इनसानों को और कहीं मिलती है? दुनिया में अम्न क़ायम करने, क़ौमों की दुश्मनियों को मिटाने और लड़ाई-झगड़ों के बजाए मुहब्बत, दोस्ती और बिरादरी की फ़िज़ा पैदा करने के लिए इससे बेहतर नुस्ख़ा किसने तजवीज़ किया है?

अम्न के क़ियाम की सबसे बड़ी तहरीक

इस्लाम सिर्फ़ इतना ही नहीं करता, इससे बढ़कर यहाँ और बहुत कुछ है। उसने लाज़िम किया है कि साल के चार महीने जो हज और उमरा के लिए मुक़र्रर किए गए हैं, उनमें कोशिश की जाए कि काबा की तरफ़ आनेवाले तमाम रास्तों में अम्न क़ायम रहे। यह दुनिया में अम्न क़ायम रखने की सबसे बड़ी तहरीक है, जो हमेशा-हमेशा रहनेवाली है। और अगर दुनिया की सियासत की बागडोर इस्लाम के हाथों में हो तो कम से कम साल का एक तिहाई हिस्सा तो हमेशा-हमेशा के लिए जंग और ग़ारतगरी से ख़ाली रह सकता है।

दुनिया में वाहिद अम्न का मरकज़

उसने दुनिया को एक ऐसा हरम दिया है जो क़ियामत तक के लिए अम्न का शहर है, जिसमें आदमी तो क्या जानवर तक का शिकार नहीं किया जा सकता, जिसमें घास तक काटने की इजाज़त नहीं, जिसकी ज़मीन का काँटा तक नहीं तोड़ा जा सकता, जिसमें हुक्म है कि किसी की कोई चीज़ गिरी पड़ी हो तो उसे हाथ तक न लगाओ।

उसने दुनिया को एक ऐसा शहर दिया है जिसमें हथियार लाने के लिए मना किया गया है, जिसमें ग़ल्ले और दूसरी आम ज़रूरत की चीज़ों को रोककर महँगा करना 'इलहाद' (ख़ुदा के इनकार) की हद तक पहुँच जाता है, जिसमें ज़ुल्म करनेवाले को अल्लाह ने धमकी दी है कि—

نُذِقْهُ مِنْ عَذَابٍ اَلِيْمٍ.

"हम उसे दर्दनाक सज़ा देंगे।"

हक़ीक़ी बराबरी का मरकज़

उसने दुनिया को एक ऐसा मरकज़ दिया है जिसकी तारीफ़ यह है कि—

سَوَآءَ الْعَاكِفُ فِيْهِ وَالْبَادِ.

यानी वहाँ तमाम उन इनसानों के हक़ बिलकुल बराबर हैं जो ख़ुदा की बादशाही और मुहम्मद (सल्ल०) की रहनुमाई तसलीम करके इस्लाम की बिरादरी में दाख़िल हो जाएँ। चाहे कोई इनसान अमेरिका का रहनेवाला हो या अफ़्रीक़ा का, चीन का हो या हिन्दुस्तान का, अगर वह मुसलमान हो जाए तो मक्का की ज़मीन पर उसके वही हक़ हैं जो ख़ुद मक्कावालों के हैं। पूरे हरम के इलाक़े की हैसियत मानो एक मसजिद की-सी है कि जो आदमी मसजिद में जाकर किसी जगह अपना डेरा जमा दे वह जगह उसी की है। कोई उसको वहाँ से उठा नहीं सकता, न उससे किराया माँग सकता है। मगर वह उस जगह चाहे सारी उम्र बैठा रहा हो, उसे यह कहने का हक़ नहीं है कि यह जगह मेरी मिलकियत है। न वह उसको बेच सकता है, न उसका किराया वुसूल कर सकता है, यहाँ तक कि जब वह शख़्स वहाँ से उठ जाए तो दूसरे को भी वहाँ डेरा जमाने का वैसा ही हक़ है, जैसा उसको था। बिलकुल यही हाल पूरे मक्का के हरम का है।

नबी (सल्ल०) का इरशाद है—

مَكَّةُ مُنَاخٌ لِّمَنْ سَبَقَ.

"जो आदमी इस शहर में किसी जगह आकर पहले उतर जाए, वह जगह उसी की है।"

वहाँ के मकानों का किराया लेना जाएज़ नहीं है। हज़रत उमर (रज़ि०) ने वहाँ के लोगों को हुक्म दे दिया था कि अपने मकानों के गिर्द आँगनों पर दरवाज़े न लगाओ, ताकि जो चाहे तुम्हारे आँगन में आकर ठहर सके। कुछ फ़ुक़हा ने तो यहाँ तक कहा कि शहर मक्का के मकानों पर न किसी की मिलकियत है और न वे विरासत में दिए जा सकते हैं।

क्या इस्लाम के सिवा आदमी को ये नेमतें कहीं और भी मिल सकती हैं?

भाइयो! यह है वह हज, जिसके बारे में फ़रमाया गया था कि इसे करके देखो, इसमें तुम्हारे लिए कितने फ़ायदे हैं। मेरी ज़बान में इतनी ताक़त नहीं कि इसके सारे फ़ायदे गिना सकूँ, फिर भी इसके फ़ायदों का यह ज़रा-सा ख़ाका जो मैंने आपके सामने पेश किया है, इसी से आप समझ सकते हैं कि यह क्या चीज़ है?

हमारी नाक़द्री

मगर यह सब सुनने के बाद ज़रा मेरे जले दिल की कुछ बातें भी सुन लीजिए! आप नस्ली मुसलमानों का हाल उस बच्चे का-सा है जो हीरे की खान में पैदा हुआ हो। ऐसा बच्चा जब हर तरफ़ हीरे ही हीरे देखता है और पत्थरों की तरह हीरों से खेलता है तो हीरे उसकी निगाह में ऐसे ही बेक़द्र हो जाते हैं जैसे पत्थर। यही हाल आपका भी है कि दुनिया जिन नेमतों से महरूम है और इस महरूमी की वजह से जो सख़्त मुसीबतें और तकलीफ़ें उठा रही है और जिनकी तलाश में हद से ज़्यादा परेशान है, वे नेमतें आपको मुफ़्त में बग़ैर किसी तलाश व जुस्तजू के सिर्फ़ इस वजह से मिल गईं कि ख़ुशक़िस्मती से आप मुसलमान घरों में पैदा हुए हैं। तौहीद का वह कलिमा—जो आदमी की ज़िन्दगी के तमाम उलझे हुए मसलों को सुलझाकर एक साफ़-सीधा रास्ता बना देता है—बचपन से आपके कानों में पड़ा। नमाज़ और रोज़े के वे कीमिया से ज़्यादा क़ीमती नुस्ख़े जो आदमी को जानवर से इनसान बना देते हैं और इनसानों को ख़ुदातरस और एक-दूसरे का भाई, हमदर्द और दोस्त बनाने के लिए जिनसे अच्छे नुस्ख़े आज तक मालूम नहीं हो सके हैं, आपको आँख खोलते ही ख़ुद-ब-ख़ुद बाप-दादा

की मीरास में मिल गए। ज़कात की वह बेमिसाल तरकीब जिससे सिर्फ़ दिलों ही की नापाकी दूर नहीं होती, बल्कि दुनिया के मालियात का निज़ाम भी दुरुस्त हो जाता है, जिससे महरूम होकर आप ख़ुद अपनी आँखों से देख रहे हैं कि दुनिया के लोग एक-दूसरे का मुँह नोचने लगे हैं, आपको वह इस तरह मिल गई जैसे किसी होशियार हकीम के बच्चे को बिना मेहनत के वे नुस्ख़े मिल जाते हैं जिन्हें दूसरे लोग ढूँढ़ते फिरते हैं। इसी तरह हज का वह अज़ीमुश्शान तरीक़ा भी जिसका आज दुनिया में कहीं जवाब नहीं है, जिससे ज़्यादा ताक़तवर ज़रिया किसी तहरीक को चारों तरफ़ दुनिया में फैलाने और हमेशा ज़िन्दा रखने के लिए आज तक मालूम नहीं हो सका है, जिसके सिवा आज दुनिया में कोई आलमगीर ताक़त ऐसी मौजूद नहीं है कि आदम की सारी औलाद को ज़मीन के कोने-कोने से खींचकर एक ख़ुदा के नाम पर एक मरकज़ पर जमा कर दे और अनगिनत नस्लों और क़ौमों को एक ख़ुदापरस्त, नेकनीयत, ख़ैरख़्वाह बिरादरी में पेवस्त करके रख दे। हाँ, ऐसा बेमिसाल तरीक़ा भी आपको बग़ैर किसी जुस्तजू के बना बनाया और सैकड़ों वर्ष से चलता हुआ मिल गया, मगर आपने इन नेमतों की कोई क़द्र न की, क्योंकि आँख खोलते ही ये आपको अपने घर में हाथ आ गईं। अब आप उनसे बिलकुल उसी तरह खेल रहे हैं, जिस तरह हीरे की खान में पैदा होनेवाला नादान बच्चा हीरों से खेलता है और उन्हें कंकड़-पत्थर समझने लगता है। अपनी जिहालत व नादानी की वजह से जिस बुरी तरह आप इस ज़बरदस्त दौलत और ताक़त को बरबाद कर रहे हैं, उसका नज़्ज़ारा देखकर दिल जल उठता है। कोई कहाँ से इतनी बरदाश्त की ताक़त लाए कि पत्थरफोड़ों के हाथों जवाहिरात को बरबाद होते देखकर ज़ब्त कर सके?

मेरे प्यारो! आपने शायर का यह शेर तो सुना ही होगा—

ख़रे ईसा अगर ब मक्का रवद
चूँ बियायद हुनूज़ ख़र बाशद

यानी गधा चाहे ईसा (अलै०) जैसे पैग़म्बर ही का क्यों न हो मक्का की ज़ियारत से कोई फ़ायदा नहीं उठा सकता, अगर वह वहाँ हो आए तब भी जैसा गधा था, वैसा ही रहेगा।

नमाज़, रोज़ा हो या हज, ये सब चीज़ें समझ-बूझ रखनेवाले इनसानों की तरबीयत के लिए हैं, जानवरों को सुधारने के लिए नहीं हैं। जो लोग न उनके मतलब व माने को समझें, न उनके मक़सद से कुछ मतलब रखें, न उस फ़ायदे को हासिल करने का इरादा ही करें जो इन इबादतों में भरा हुआ है, बल्कि जिनके दिमाग़ में इन इबादतों के मक़सद व मतलब का सिरे से कोई ख़याल ही न हो, वे अगर इन कामों की नक़ल इस तरह उतार दिया करें कि जैसा पिछलो को करते देखा वैसा ही खुद भी कर दिया, तो इससे आख़िर किस नतीजे की उम्मीद की जा सकती है ? बदक़िस्मती से आम तौर पर आजकल के मुसलमान इसी तरीक़े से इन कामों को अंजाम दे रहे हैं। हर इबादत की ज़ाहिरी शक्ल जैसी मुक़र्रर कर दी गई है, वैसी ही बनाकर रख देते हैं, मगर वह शक्ल रूह से बिलकुल ख़ाली होती है। आप देखते हैं कि हर साल हज़ारों ज़ियारत करनेवाले इस्लाम के मरकज़ की तरफ़ जाते हैं और हज करके पलट आते हैं, मगर न जाते वक़्त ही उनपर वह असली कैफ़ियत तारी होती है जो हरम के एक मुसाफ़िर में होनी चाहिए और न वहाँ से वापस आकर ही उनमें हज का कोई असर पाया जाता है और न ही इस सफ़र के बीच में वे इन आबादियों के मुसलमानों और ग़ैर मुसलिमों पर अपने अख़लाक़ का कोई अच्छा असर डालते हैं, जिनपर से उनका गुज़र होता है। बल्कि इसके बिलकुल उल्टे उनमें ज़्यादातर वे लोग शामिल होते हैं जो अपनी गन्दगी, बदतमीज़ी और अख़लाक़ी पस्ती की नुमाइश करके इस्लाम की इज़्ज़त को बट्टा लगाते हैं। उनकी ज़िन्दगी को देखकर बजाए इसके कि दीन की बुज़ुर्गी का कोई सिक्का दूसरों पर जमे, ख़ुद अपनों की निगाहों में भी वह बेइज़्ज़त हो जाता है। और यही वजह है कि आज ख़ुद हमारी अपनी क़ौम के बहुत-से नौजवान हमसे पूछते हैं कि ज़रा इस हज का फ़ायदा तो हमें समझाओ, हालाँकि यह हज वह चीज़ थी कि अगर इसे इसकी असली शान के साथ अदा किया जाता तो ग़ैर मुसलिम तक इसके फ़ायदों को एलानिया देखकर ईमान ले आते। किसी तरहरीक के हज़ारों लाखों मेम्बर हर साल दुनिया के हर हिस्से से ख़िंचकर इकट्ठा हों और फिर अपने-अपने मुल्कों को वापस जाएँ, मुल्क-मुल्क और शहर-शहर से गुज़रते हुए अपनी पाकीज़ा ज़िन्दगी, पाकीज़ा ख़यालात और पाकीज़ा अख़लाक़ को ज़ाहिर करते जाएँ, जहाँ-जहाँ ठहरें और जहाँ-जहाँ

से गुज़रें वहाँ अपनी तरहीक के उसूलों का न सिर्फ़ ज़बान से प्रचार करें, बल्कि अपनी अमली ज़िन्दगी से उनका पूरा-पूरा मुज़ाहिरा भी कर दें, और यह सिलसिला दस-बीस वर्ष नहीं, बल्कि सदियों तक साल-ब-साल चलता रहे, भला ग़ौर तो कीजिए कि यह भी कोई ऐसी चीज़ थी कि इसके फ़ायदे पूछने की किसी को ज़रूरत पेश आती? ख़ुदा की क़सम! अगर यह काम सही तरीक़े पर होता तो अंधे तक उसके फ़ायदे देखते और बहरे उसके फ़ायदे सुन लेते। हर साल का हज करोड़ों मुसलमानों को नेक बनाता, हज़ारों ग़ैर मुसलिमों को इस्लाम के दायरे में खींच लाता और लाखों ग़ैर मुसलिमों के दिलों पर इस्लाम की बुज़ुर्गी का सिक्का बिठा देता। मगर बुरा हो जिहालत का, जाहिलों के हाथ पड़कर कितनी क़ीमती चीज़ किस बुरी तरह बरबाद हो रही है।

हज से पूरे फ़ायदे हासिल करने का तरीक़ा

हज के पूरे फ़ायदे हासिल होने के लिए ज़रूरी था कि इस्लाम के मरकज़ में कोई ऐसा हाथ होता जो इस आलमगीर ताक़त से काम लेता, कोई ऐसा दिल होता जो हर साल तमाम दुनिया के जिस्म में पाक ख़ून दौड़ाता रहता, कोई ऐसा दिमाग़ होता जो इन हज़ारों लाखों ख़ुदा के भेजे हुए क़ासिदों के वास्ते से दुनिया भर में इस्लाम के पैग़ाम को फैलाने की कोशिश करता, और कुछ नहीं तो कम-से-कम इतना ही होता कि वहाँ ख़ालिस इस्लामी ज़िन्दगी का एक मुकम्मल नमूना मौजूद होता और हर साल दुनिया के मुसलमान वहाँ से सही दीनदारी का ताज़ा सबक़ ले-लेकर पलटते। मगर हाय अफ़सोस कि वहाँ कुछ भी नहीं! लम्बी मुद्दतों से अरब में जिहालत परवरिश पा रही है। अब्बासियों के दौर से लेकर उसमानियों के दौर तक हर ज़माने के बादशाह अपनी सियासी ग़रज़ की ख़ातिर अरब को तरक़्क़ी देने के बजाए सदियों से लगातार गिराने की कोशिश करते रहे हैं। उन्होंने अरबवालों को इल्म, अख़लाक़ व तमद्दुन हर चीज़ के एतबार से पस्ती की इनतिहा तक पहुँचाकर छोड़ा है। नतीजा यह है कि वह सरज़मीन, जहाँ से कभी इस्लाम का नूर तमाम दुनिया में फैला था, आज उसी जाहिलियत के क़रीब पहुँच गई है, जिसमें वह इस्लाम से पहले मुबतिला थी। अब न वहाँ इस्लाम का इल्म है, न इस्लामी अख़लाक़ है, न इस्लामी ज़िन्दगी है। लोग दूर-दूर

से बड़ी गहरी अक़ीदतें लिए हुए पाक हरम का सफ़र करते हैं, मगर इस इलाक़े में पहुँचकर जब हर तरफ़ उनको जिहालत, गन्दगी, लालच, बेहयाई, दुनियापरस्ती, बदअख़लाक़ी, बदइनतिज़ामी और आम बाशिन्दों की हर तरह गिरी हुई हालत नज़र आती है तो उनकी उम्मीदों का पूरा ताना-बाना बिखर जाता है, यहाँ तक कि बहुत-से लोग हज करके अपने ईमान बढ़ाने के बजाए और उल्टा कुछ खो आते हैं। वही पुरानी महन्तगरी जो हज़रत इबराहीम व इसमाईल (अलै०) के बाद जाहिलियत के ज़माने में काबे पर छाई हुई थी और जिसे अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने आकर ख़त्म किया था, अब फिर ताज़ा हो गई है। हरम काबा के मुन्तज़िम फिर उसी तरह महन्त बनकर बैठ गए हैं। ख़ुदा का घर उनके लिए जायदाद और हज उनके लिए तिजारत बन गया है। हज करनेवालों को वे अपना ग्राहक समझते हैं। दूसरे मुल्कों में बड़ी-बड़ी तनख़्वाहें पानेवाले एजेन्ट मुक़र्रर हैं, ताकि ग्राहकों को घेर-घेरकर भेजें। हर साल अजमेर के ख़ादिमों की तरह एक दल-का-दल दलालों और सफ़री एजेन्टों का मक्का से निकलता है, ताकि दुनियाभर के मुल्कों से ग्राहकों को घेर लाएँ। क़ुरआनी आयतें और हदीस के हुक्म लोगों को सुना-सुनाकर हज पर तैयार किया जाता है, इसलिए नहीं कि उन्हें ख़ुदा का आएद किया हुआ फ़र्ज़ याद दिलाया जाए, बल्कि सिर्फ़ इसलिए कि इन हुक्मों को सुनकर ये लोग हज को निकलें तो आमदनी का दरवाज़ा खुले। मानो अल्लाह तआला और उसके रसूल ने यह सारा कारोबार उन्हीं महन्तों और उनके दलालों की परवरिश के लिए फैलाया था। फिर जब इस फ़र्ज़ को अदा करने के लिए आदमी घर से निकलता है तो सफ़र शुरू करने से लेकर वापसी तक हर जगह उसको मज़हबी मज़दूरों और दीनी ताजिरों से साबिक़ा पेश आता है। मुअल्लिम, तवाफ़ करने और तवाफ़ करानेवाले, काबे की कुँजी रखनेवाले और ख़ुद हिजाज़ की हुकूमत, सब इस तिजारत में हिस्सेदार हैं। हज के सारे मनासिक मुआवज़ा लेकर अदा कराए जाते हैं। एक मुसलमान के लिए काबा के घर का दरवाज़ा तक फ़ीस के बग़ैर नहीं खुल सकता (ख़ुदा पनाह में रखे)। यह बनारस और हरिद्वार के पंडितों की-सी हालत उस दीन के सिर्फ़ नाम के ख़िदमत गुज़ारों और मरकज़ी इबादतगाह के मुजाविरों ने इख़तियार कर रखी है, जिसने महंतगरी के कारोबार की जड़ काट दी थी। भला जहाँ इबादत कराने का

काम मज़दूरी और तिजारत बन गया हो, जहाँ इबादतगाहों को आमदनी का ज़रिया बना लिया गया हो, जहाँ ख़ुदा के हुक्मों का इस ग़रज़ के लिए इस्तेमाल किया जाता हो कि ख़ुदा का हुक्म सुनकर लोग फ़र्ज़ बजा लाने के लिए मजबूर हों और इस ताक़त के बल पर उनकी जेबों से रुपया घसीटा जाए, जहाँ आदमी को इबादत का हर रुक्न अदा करने के लिए मुआविज़ा देना पड़ता हो और दीनी सआदत एक तरह से ख़रीद व फ़रोख़्त की चीज़ बन गई हो, ऐसी जगह इबादत की रूह बाक़ी कहाँ रह सकती है? किस तरह आप उम्मीद कर सकते हैं कि हज करनेवालों और हज करानेवालों को इस इबादत के हक़ीक़ी और रूहानी फ़ायदे हासिल होंगे? जबकि यह सारा काम एक तरफ़ सौदागरी और दूसरी तरफ़ ख़रीदारी की ज़ेहनियत से हो रहा हो?[1]

इस ज़िक्र से मेरा मक़सद किसी को इलज़ाम देना नहीं है, बल्कि सिर्फ़ आप लोगों को यह बताना है कि हज जैसी अज़ीमुश्शान ताक़त को आज किन चीज़ों ने तक़रीबन बेअसर बनाकर रख दिया है। यह ग़लतफ़हमी किसी के दिल में न रहनी चाहिए कि इस्लाम में और उसके जारी किए हुए तरीक़ों में कोई कोताही है। नहीं, कोताही दरअसल उन लोगों में है जो इस्लाम की सही और ठीक-ठीक पैरवी नहीं करते। यह आपके अपने हाथों की कमाई है कि जो तरीक़े आपको इनसानियत का मुकम्मल नमूना बनानेवाले थे और जिनपर ठीक-ठीक अमल करके आप तमाम दुनिया का सुधार करनेवाले और इमाम बन सकते थे, उनसे आज कोई अच्छा फल ज़ाहिर नहीं हो रहा है और नौबत यहाँ तक पहुँच गई है कि लोगों को ख़ुद इन तरीक़ों

---

1. ध्यान रहे कि यह ख़ुतबा सन् 1938 ई० का है। इसके बाद से अब तक हालात का बहुत कुछ सुधार हो चुका है और सऊदी अरब की हुकूमत और भी सुधार के लिए कोशिश कर रही है। रियाज़, मक्का, जिद्दा आदि शहरों में शरीअत की तालीम के लिए ऊँचे दर्जे के इदारे क़ायम किए गए हैं। मदीना में एक इस्लामी यूनिवर्सिटी ने बड़े पैमाने पर काम शुरू कर दिया है। मक्का में राबिता आलम-ए-इस्लामी के नाम से इस्लामी जगत का एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन क़ायम किया गया है जो पूरी कोशिश कर रहा है कि हज के इजतिमा से फ़ायदा उठाकर तमाम मुसलमानों में दीनी रूह पैदा की जाए। इन पहलुओं से हालात बड़ी हद तक क़ाबिले इतमीनान हैं। अब दो कामों की तरफ़ खास ध्यान देने की ज़रूरत है। एक यह कि मक्का-मदीना की सरज़मीन को मग़रबी तहज़ीब के सैलाब से बचाया जाए। दूसरे यह कि मुअल्लमीन के तरीक़ेकार की इसलाह की जाए। ख़ुदा करे कि सऊदी हुकूमत इस बारे में सही तदबीरें अमल में लाए। —प्रकाशक

के फ़ायदेमंद होने में शक होने लगा है। इसकी मिसाल बिलकुल ऐसी है जैसे एक तजुर्बाकार हकीम बेहतरीन पुरअसर नुस्ख़े तैयार करके छोड़ गया हो और बाद में उसके वे नुस्ख़े अनाड़ी और जाहिल जानशीनों के हाथों पड़कर बेकार भी हो रहे हों और बदनाम भी। नुस्ख़ा ख़ुद में चाहे कितना ही सही हो, मगर हर हाल में उससे काम लेने के लिए फ़न की जानकारी और समझ-बूझ ज़रूरी है। अनाड़ी उससे काम लेंगे तो अजब नहीं कि वह ग़ैर मुफ़ीद ही नहीं, बल्कि नुक़सानदेह हो जाए और जाहिल लोग, जो ख़ुद नुस्ख़े के जाँचने की सलाहियत न रखते हों, इस ग़लतफ़हमी में पड़ जाएँ कि नुस्ख़ा ख़ुद ही ग़लत है।

☆★☆